विभाग -13

ध्यान पियूष



धारणा - 95

तंद्रा प्रवेश ध्यान

ध्यान सूक्ति - 95

नहीं जागृति नहीं निंद्रा क्षण है, तेहि को तंद्रावस्था कहत है।
बाह्यं विषय का नहीं आक्रमण, तेहि क्षण में करो महा अतिक्रमण।।

ध्यान विधि - 95

निद्रा के उतरने के पहले के क्षणों में मन का अतिक्रमण करके समाधि में प्रवेश कर लो ।



जिस क्षण आदमी पूरा जागा हुआ भी नहीं है और गाढ़ निद्रा में भी नहीं है, न स्वप्न देख रहा है। वह थोड़ा उनिंदा महसूस कर रहा है, नींद उतर रही है लेकिन अभी पूरी पूरी नहीं उतरी है। जाग्रति जा रही है लेकिन पूरी पूरी नहीं गई है। ऐसी अवस्था को तंद्रा कहते हैं।

प्रिय साधको!

सामान्य रूप से हमारे मनीषियों ने चार अवस्था बताई हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ती और तुर्या। प्रथम तीन अवस्था साधारण मनुष्य की होती हैं। और चौथी आत्मनिष्ठ आत्माओं के लिए। परंतु यहाँ एक ऐसी विधि की ओर हम जा रहे हैं जो पाँचवी अवस्था है। उस पर ध्यानस्थ होकर आपको संसार का अतिक्रमण कर लेना है।

विधि तो बहुत छोटी और साधारण लगेगी। कभी कभी मनुष्य संशय करता है कि इतनी छोटी सी विधि से, ऐसी साधारण विधि से असाधारण परिणाम कैसे घट सकता है?

परंतु बात विधि की नहीं विधि तो माध्यम है। बात है आपकी समग्रता की, एकाग्रता की, आंतरिक पुरुषार्थ की।

दोस्तो, एक छोटा सा अंकुश महाकाय हाथी को वश में रखता है। इसलिए फिर से एकबार कहती हूँ कि आपको संशय नहीं, ध्यान करना है। अगर मेरे ग्रंथों को पढ़कर या मुझे सुनकर आपको पिस्टपेशन में ही उतरना है तो और बहुत से ग्रंथ हैं दुनियाँ में; मुझे और मेरे ग्रंथों को छोड़

देना। क्योंकि आपका संशय आपको विक्षिप्त कर देगा। शास्ता तो मनुष्य के हित और सुख के लिए बहुत कुछ दे रहा होता है परंतु कभी कभी मनुष्य का विचित्र और विकृत स्वभाव सुख में से भी दुख ढूंढ निकालेगा। कुछ लोगों की ऐसी आदत होती है। उसके साथ कुछ नहीं हो सकता।

एक बार मैंने कुछ औरतों को बैठकर बातें करते हुए सुना। फिर मुझे बहुत हंसी आई। एक ने कहा कि मुझे तीन बेटे हैं परंतु बेटी नहीं हुई। बेटी बिना तो क्या कोई घर होता है? वह तो लक्ष्मी होती है। दूसरी औरत ने कहा अरे मेरे घर में तीन लक्ष्मी हैं परंतु बेटा नहीं है। बिना बेटे के जिन्दगी क्या? तीसरी ने कहा, मुझे तो संतान ही नहीं हुई – मैं कहूंगी कि तीनों सुखी हैं; परंतु यह मेरी दृष्टि है। एक साधवी के नाते मुझे क्षणभर तो हुआ कि मैं आप तीनों से सुखी हूँ। परंतु नासमझों से संवाद करना अपराध है।

तीन पुत्र हैं तो खुश होना चाहिए, बेटी अगर लक्ष्मी है तो तीन बेटियों से खुश रहना चाहिए क्योंकि लक्ष्मी के लिए तो दुनियां पागल है। परंतु उस औरत को भगवान को तीन तीन लक्ष्मी दे दी तो भी दुःखी है और जिसे संतान नहीं है उसे कलियुग की कुपराक्रमी संतानों से तो अच्छा है कि कोई झंझट ही नहीं। परम शांति है। परंतु वह भी दुःखी है।

दोस्तो, बात नज़रिए की है। वैसे तो हर इंसान में एक ज्ञानी पड़ा है परंतु वह सोया हुआ है। हर मनुष्य में आप नृसिंह मेहता को नहीं ढूंढ सकते। मैं आपको इतना ही कहूंगी कि सीधी बात को सीधा सीधा समझने की कोशिश करना। वर्तमान में खुश रहना सीखो और हर हाल में साक्षी को जगाना सीखो। ध्यान का यह परम संदेश है।

शास्त्रों पर खामखा तर्क और वाद–विवाद करने वालों को मैं पोंगा पंडित कहती हूँ। आप वाद–विवाद में मत पड़ो, अपनी बात को साध लो।

खैर! अब आईए विधि की ओर। तंद्रा का अर्थ क्या है? जिस क्षण में आदमी पूरा जागा हुआ भी नहीं है और गाढ़ निद्रा में भी नहीं है, न स्वप्न देख रहा है। वह थोड़ा उनिंदा महसूस कर रहा है, नींद उतर रही है लेकिन अभी पूरी पूरी नहीं उतरी है। जाग्रति जा रही है लेकिन पूरी पूरी नहीं गई है। ऐसी अवस्था को तंद्रा कहते हैं।

उसे आप निद्रा की पहले की अवस्था भी कह सकते हैं। किसीके लिए तंद्रा के क्षण लंबे होते हैं तो किसीके लिए छोटे परंतु तंद्रा आपके मनोदेहिक तंत्र का एक ऐसा आयाम है कि जहाँ से आपको गुजरे बिना आपका जाग्रत मन निद्रा में नहीं जा सकता।

प्यारे भक्तो!

विधि कहती है कि इन क्षणों को ध्यान की क्षण बना दो। क्योंकि इन क्षणों में मन और शरीर आराम में जाकर सोने की तैयारी कर रहे हैं। एक अर्थ में शांत होते जा रहे हैं। बस आपको इसी शांति का फायदा उठाना है। सामान्य संजोगों में आपको चित्त को शांत करने के लिए कितनी क़वायद करनी पड़ती है! मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक। कितने कितने मोड़ से गुजरना पड़ता है आपको! परंतु तंद्रा अवस्था में सहज शांति उतर आती है। मूर्छा में जाने की तैयारी है। मैं कहूंगी कि निद्रा कुछ घंटो की चेतन मन की मूर्छा है। उस क्षण का लाभ उठा लो।

मैंने इस ध्यान का गहन अभ्यास किया है और अनुभव भी। बड़े मज़े की बात है। आज के मनुष्य के लिए मन को शांत करना यह सबसे

बड़ा प्रश्न हो गया है। कैसे करें मन को शांत? मनुष्य मन चिंता, तनाव और अशांति से भरा हुआ है। इन तीनों का कच्चा सामान वह दिनभर इकट्ठा करता रहता है। परंतु जब तंद्रा अवस्था तक मनुष्य पहुंच जाए तब मन लगभग शांत हो गया होता है। फिर भी आप जाग्रत हैं। सो नहीं गए हैं। इस क्षण में बाह्य विषयों का आक्रमण नहीं होता।

दोस्तो! चिंता, और विचारों की अवस्था में आदमी तंद्रा तक भी नहीं पहुंच सकता। तंद्रा अवस्था में कोई खास विचार नहीं होते। अगर रात्रि का समय है तो माहोल में भी सहज शांति उपलब्ध हो जाती है। इस मौके को मत गंवाना। भीतर और बाहर दोनों शांति सहजता से उपलब्ध हो जाए तो इसे मैं आज के युग की उपलब्धि कहूंगी। धन्य भाग्य कहूंगी।

प्यारे साधको!

विधि बहुत सरल है। इसमें कुछ आपको विशेष करना ही नहीं है। करना इतना है कि आपको आपके चित्त को न्यूट्रल गीयर में डाल देना है। अर्थात न विचारों में जाना है, न निद्रा की ओर गति करनी है। जहाँ है वहाँ रुक जान है। आप जिस स्थिति में हैं उस स्थिति का परम चेतना के द्वारा अनुभव करने लगो।

मनुष्य की एक ही तकलीफ है। मनुष्य करता सबकुछ है परंतु वह केवल क्रियात्मक होता है। मैं चाहती हूँ कि क्रियात्मकता के साथ भावात्मकता का सहज संयोग हो जाए। मनुष्य ऐसा नहीं करता है। ऐसा अनुभव लेना यह भी एक आनंद है। आदमी जल पीता है परंतु उसकी प्यास अंजाने में बुझती है, वह जल का आनंद नहीं ले सकता। उसके भाव और चित्त कहीं और है। वह तो पानी पीकर केवल शरीर की जरूरत पूरी करता है। भोजन लेता है परंतु स्वाद का आनंद चूक जाता है। संसार

भुगतता है परंतु अनुभव का आनंद चूक जाता है। खेलता है परंतु हार जीत के तनाव में खेल का मज़ा लेना चूक जाता है। शिक्षण लेता है परंतु वास्तव में शिक्षित होने का आनंद और संतोष नहीं उठा पाता।

दोस्तो! क्या करें? वह अर्ध पागल जैसा जी रहा है। हर काम में वह इतना उतावला है कि क्रिया में भावजगत जुड़े उसके पहले तो क्रिया खत्म हो जाती है। आदमी जैसा संसार में करता है वैसा ही अध्यात्म जगत में भी। इसी कारण से वह असफल रहता है, असंतुष्ट रहता है। साधु बाबाओं के पास जब वह जाता है तब उसका मन प्रश्नों से ही भरा है। क्योंकि स्वयं में से शांति और समाधान पाने की कला और क्षमता को वह गंवा चुका है।

दोस्तो! सांसारिक सफलता की व्याख्या अलग है और आध्यात्मिक सफलता अलग है। आपकी बाहर की ओर जितनी अशांति दौड़–धूप, चिंता, तनाव आदि बढ़ेंगे उतने ही लौकिक दृष्टि से स्वीकृत की हुई सफलताएं आपको प्राप्त हो पाएंगी। जैसे कि धन, पद–प्रतिष्ठा, नाम आदि। भीतर के जगत की बात और है। भीतर के जगत की सफलता है रुकना, स्थिर होना, शांत रहना, संतुष्ट रहना, आनंदित रहना, मौन का उतरना और एकांत में उत्सव।

आज के आदमी के पास ऐसी बात भी करते हैं तो कहता है कि क्या हमें आध्यात्मिक बनकर भूखा मरना है? आपकी शांति भाड़ में गई। अरे समाज में, राजनीति में, पार्टियों में, मेरे अस्तित्व का सवाल खड़ा हो जाएगा।

दोस्तो! बाहरी अस्तित्व को विकसित करने के भ्रम में उसके भीतर का अस्तित्व इतना संकुचित हो जाता है कि इस जन्म में मनुष्य के जागने की संभावना ही मिट जाती है। खैर!

प्यारे साधको!

ध्यान की प्रत्येक विधि आध्यात्मिक रूप से जागने के लिए है। तो अब फिर से विधि को एक बार समझिए। तंद्रा अवस्था की क्षणों में स्थिर हो जाओ। परंतु आदमी ऐसा नहीं कर सकता। मैं कहूँगी कि स्थिर हो जाओ और आप सोचने लगेंगे। अगले दिन का प्लानिंग करने लगेंगे। महीनों और बरसों तक की बातें सोच लेंगे। जो बातें पूरी होने की कोई गेरंटी ही नहीं। ऐसा क्यों होता है। क्योंकि आदमी को पूरे दिन पागल कुत्ते की तरह भागने की आदत हो गई है। रात को जो संभव बने तो विषय भोग से थक जाता है और बोनस में अगले दिन की चिंता और थकान तैयार है। इसलिए वह सोने के लिए उतावला है।

आज के मनुष्य के लिए तंद्रावस्था दूर होती जा रही है। क्योंकि यह अवस्था आपका थोड़ा समय लेती है। परंतु मनुष्य के पास उस मोड़ तक पहुंचने का और निद्रा की प्रतीक्षा करने का समय नहीं है। रोटी की तरह नींद की गोली भी उसकी रोजाना खुराक का हिस्सा बन गई है। क्यों? क्योंकि अगर सोने में देर लगी, तंद्रावस्था लंबी रही तो सोएंगे कब? सुबह पागल की तरह उबाऊ जिंदगी का पुनरावर्तन कौन करेगा? अगर नींद नहीं आई तो पागल की तरह भागेगा कौन? आज की शांति बढ़ जाएगी तो कल की शांति खो जाएगी।

कैसी मजबूरी है यह मनुष्य की? यह कैसा अभिषाप? अपना ही जीवन परंतु आदमी इसे एक समझ के साथ, आनन्द के साथ अपनी इच्छा अनुसार जी न सकें?

एक राजा था। अपने सैनिकों के साथ वह जीवन में पहली बार किसी और राज्य पर चढ़ाई करने जा रहा था। इसके पहले, लड़ाई क्या होती है। इस बात का उसे पता नहीं था। सुजान मंत्रियों की सलाह के अनुसार सब चलता रहता था। सैन्य जब कूच कर रहा था तो थोड़े आगे निकलते ही रास्ते में अचानक उसके काफिले का एक ऊंट मर गया। कुछ लोग खड़े रह गए, राजा ने पूछा सब खड़े क्यों हैं? किसी ने बताया कि एक ऊंट मर गया। राजा को आजतक पता ही नहीं था कि मृत्यु क्या होता है? राजा ने कहा कि ऊंट कहाँ है? सैनिकों ने मरा हुआ ऊंट बताया। राजा ने कहा कि यह मरा कहाँ है? इसके तो पैर, सर, शरीर सब वैसे का वैसा है, तो इसमें मरा क्या? इसे खड़ा करो। सैंनिकों ने कहा – महाराज! जान चली गई। राजा बोले वह क्या होती है? सैंनिकों ने कहा कि यह हम नहीं समझा सकते। ये समझने के लिए तो आपको किसी सन्यासी के पास जाना पड़ेगा। राजा ने सोचा कि एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि मेरा शरीर भी ऊंट की तरह ऐसा का ऐसा रह जाए और मैं गिर जाऊं, निश्चेतन हो जाऊं, मर जाऊं, और मुझे पता तक न चले कि मैं मर गया। हालांकि! राजा महाराजाओं के पास ऐसी सोच नहीं होती। परंतु यह जरा अलग किस्म का राजा होगा। राजा ने कहा – मेरे साथ ऐसा नहीं होना चाहिए। मैं मृत्यु को जानने के बाद मरना चाहता हूँ। उसने सैन्य को वापस लौटने का आदेश दिया। और खुद ऐसे सन्यासी की खोज में निकल पड़ा जो उसे

मृत्यु का राज समझाए। और बरसों के बाद जब अपने राज्य में वापस आया तब एक राजा नहीं लौटा था, एक सन्यासी लौटा था।

प्यारे साधको!

यह बात मैंने इसलिए बताई कि वह आदमी कितना समझदार, विचारशील, अथवा सत्य का खोजी होगा! बाकी ऐसा कदम उठाना सत्ताधीशों के लिए असंभल होता है।

दोस्तो, राजा जो चढ़ाई करने जा रहा था वहाँ से वापस लौटा उसमें मृत्यु का भय या राजा का पलायन नहीं था। वह तो थी एक रहस्य की खोज। मनुष्य को सबकुछ पता है। तो मृत्यु का पता भी लगना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि कौन सी तिथि पर मरेगा उसका पता चले! परंतु जीवन की महिमा को समझ ले।

प्यारे साधको!

वैसे तो आदमी प्रतिपल मर रहा है। परंतु न वह स्वयं के प्रति सजग है, न दूसरों के प्रति संवेदनशील। यहाँ तो कभी वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर पर बम गिरता है, कहीं भूकंप आ जाता है, कहीं सुनामी आ जाता है और मानव हत्याकांड तो बनते ही रहते हैं। और टी.वी. पर इन सारी तबाहिओं को लाईव देखने वाले लोग प्रोग्राम देखते देखते पैप्सी और पकोड़े का ऑर्डर देता है। देखता भी रहता है और मजे से खाता भी रहता है। रिमोट हाथ में रह जाता है और सो जाता है। टी.वी. बकता रहता है।

प्यारे दोस्तो!

ऐसे लोग कोई ज्ञानी कक्षा के नहीं हैं, उनकी संवेदना मर चुकी है। सैंकड़ों मानवों की मृत्यु देखकर भी जिसे कोई फर्क नहीं पड़ता हो तो बेचारा ऊंट तो क्या? मज़े की बात यह है कि इस युग में मुझे ध्यान का

काम करना है। लोगों को ध्यान में ले जाना है, जगाना है, कठोर बन गए दिलों की संवेदना को पुनर्जीवित करना है। इसके लिए एकमात्र उपाय है – विचार क्रांति, धर्मक्रांति और ध्यान विधियाँ।

मुझे लगता है कि मनुष्य ध्यान के द्वारा ही पुनः संवेदनशील हो पाएगा। ध्यान के द्वारा ध्यान। जैसे प्रेम के द्वारा ही प्रेम हो सकता है, ठीक वैसे ही।

मैंने फ़ना का फ़न नाम की एक सूफी कविता में लिखा है कि

तू रुक जा तो लगे सारा जहां अब रुक गया सचमुच।
तो बंदा जान ले तेरी समाधि हो गई पक्की।

प्यारे साधको!

ध्यान में बैठो तो ऐसे बैठो कि आपके साथ मानो पूरी दुनियाँ स्थिर हो जाए। साधको! तंद्रा अवस्था को मैं कुदरत की ओर से मिला हुआ एक मूल्यवान उपहार मानती हूँ। जो तंद्रा है तो निद्रा है। निद्रा है तो आराम है। आराम है तो स्वास्थ्य है और स्वास्थ्य है तो संसार है।

दोस्तो, तो इस कुदरती उपहार का हम ध्यान में क्यों न सद्‌उपयोग कर लें? कि जिस क्षण में आपको सहजता से निर्विचार, निर्विकल्प और निर्विक्षेप स्थिति प्राप्त होती है।

दोस्तो, अगर तंद्रा अवस्था में इतना हो गया तो पौना काम तो पूरा हो गया, अब आपको केवल इतना ही करना है कि आपके भीतर कुछ स्वसंचालित आयाम हैं, उन्हें बदलने नहीं देना है। भीतर का ऑटोमेटिक गियर बदलना नहीं चाहिए। न्यूट्रल में डाल दो चित्त के गियर को। आत्म चेतना में स्थिर होने का यह उत्तम क्षण है। उस क्षण का पूरा पूरा लाभ

उठाओ। स्थिर हो जाओ तंद्रा अवस्था में। सोना भी नहीं है, जागना भी नहीं है, स्वप्न भी नहीं देखना है।

लौकिक दृष्टि से जागने का अर्थ है संकल्प - विकल्प, विचार और चिंताओं में चित्त को दौड़ाते रखना। सोने का मतलब है, चेतन मन का बेहोशी में चला जाना, मूर्छित हो जाना। परंतु तंद्रा में स्थिर हो जाने का मतलब है — एक स्वयंभू और सहज समाधि की अवस्था में रहना।

प्रिय साधको!

अगर इस कला को आपने सीख लिया तो तंद्रा अवस्था और समाधि अवस्था में कोई भेद नहीं रहेगा। मैंने ऐसे ध्यानियों को देखा है जो सहज मौन और सहज समाधि में रहते थे। देखने में लगे कि तंद्रा में हैं परंतु वास्तव में वे संसार का अतिक्रमण कर चुके थे। उन्हें यह फिकर नहीं थी कि लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं? वे अपनी समाधी में मस्त रहते थे। वे न ही जागे हुए लगते थे और न ही पूरे पूरे सोए हुए। तब इस अवस्था को मैं विशेष रूप से नहीं समझ सकती थी। परंतु लंबी साधना के बाद मुझे पता चला कि यह तंद्रा अवस्था में स्थिरता थी। वह तो ध्यान का एक प्रकार था और ध्यान की पराकाष्ठा थी।

दोस्तो! ऐसी मस्ती में रहने के लिए कुछ लोग नशे का आधार लेते हैं और चौबीसो घंटे नशे की मस्ती के कारण निर्विचार स्थिति का अनुभव करते हैं। अफसोस! आचार्य रजनीश जैसे पढ़े लिखे आदमी ने भी उस अवस्था को एक प्रकार की ध्यानावस्था के रूप में स्वीकार करके नशे को स्वीकृत माना था। शैव परम्परा और सिद्ध परंपरा में भी नशा स्वीकृत था और है। परंतु मैं ऐसी भ्रामक समाधि के पक्ष में नहीं हूँ। यह तो खुद को ही ठगना है। जो मनुष्य अपने आत्मबल से स्थिर नहीं रह सकता

है ऐसे कमज़ोर लोग नशा करके दिमागी उधेड़बुन से बचना चाहते हैं। सावधान! यह ध्यान नहीं है, एक दूषण है; आप ऐसी भ्रामक बातों में मत आना। नशे के साथ ध्यान को जोड़ना यह एक मूढ़ता है।

प्रिय साधको!

अगर इतने सत्संग के बाद कुछ बात आपके गले उतर रही है तो आज से ही प्रयास आरंभ करो। हाँ, इस ध्यान विधि के लिए आपको बाहर की मानसिक भाग-दौड़ कम करनी पड़ेगी। थोड़ा समय भी निकालना पड़ेगा। कम चीज़ों से गुजारा करना सीख लेना पड़ेगा। ज्यादा संग्रह की वृत्ति कल की चिंता में से पैदा होती है। उन वृत्तियों को और चिंताओं को, दोनों को छोड़ दो। अस्तित्व पर भरोसा रखो। ताकि नींद की ज्यादा चिंता न रहे। दुसरे दिन पागल की भांति भागने की चिंता से मुक्त हो जाओ। और तंद्रा अवस्था को समझकर यह ध्यान और ध्यान से समाधि अवस्था तक पहुंच सको। ज्यादा चिंता और दौड़ धूप का स्वभाव शरीर के लिए ज्यादा आराम मांगता है। अगर नींद पूरी नहीं होगी और स्वभाव भी नहीं बदलेगा तो दूसरे दिन शरीर थकान और प्रमाद का अनुभव करेगा। और एक दो दिन में आप विधि को छोड़ देंगे। इसलिए कहती हूँ कि पहले अपनी दौड़, चाहें, इच्छाएं, कम करो अपनी शांति और मस्ती से ज्यादा मूल्यवान कुछ भी नहीं है। इस बात का प्रतिपल बोध रखो।

दोस्तो, ध्यान में आपको पारिवारिक सहयोग मिले तो बहुत अच्छा। अगर न मिले तो संजोग को कैसे अपने पक्ष में किया जाए उसके प्रयुक्ति आपको ही ढूंढनी पड़ेगी। आपकी जिम्मेदारियाँ में आती हुई छोटी बड़ी बातों के संदर्भ में संतो के पास जाकर प्रश्न उठाने की जरूरत नहीं है। प्रत्येक संजोग कभी भी अनुकूल नहीं होते। मेरा अनुभव है कि संजोगों

को अनुकूल करना पड़ता है या सजगता से उसका स्वीकार करना पड़ता है। आप परिस्थितियों के शिकार ना बन जाओ इसके लिए सावधान रहो। जब तक शरीर में क्षमता है चित्त में होश है, दिल में साधना की चाह है तो अपने प्रश्नों को कुछ भी करके सुलझा लो। हाँ, इतना ध्यान रहे कि सुलझाने का मार्ग सम्यक होना चाहिए। अस्तित्व हरपल आपके सहयोग में है; इस बात पर भरोसा करो। और जब साधना की तीव्र भावना उठे तो मेरे एक शेर को याद रखो –

तमन्ना जो उठे ऐसी फना की कोई भी दिल में।
तो मंजूर हो गई पूरी तरह से बंदगी तेरी।



धारणा - 96

निरालंब भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 96

शयनासन स्थिर करी दृढ धारो, निराधार चित्त देह विचारो।
वासना क्षीण सत्वर ही भयहुं, कैवल पद साधक में प्रगटहुं।

ध्यान विधि - 96

शयनासन में जाकर दृढ़ भाव करो कि मेरे चित्त और शरीर किसी भी पर अवलंबित नहीं हैं। इस भाव से आप शीघ्र ही वासना शून्य होकर कैवलपद में प्रवेश कर लेंगे ।



शरीर की हर मुद्रा एक मनोभाव को प्रगट करती है। मुद्रा दो प्रकार से आकार लेती है। एक आपको पता भी न हो और आपके देह की मुद्राएं बदलती जाती हैं। यह मन का प्रतिबिंब है। और सजगता के आभाव में शरीर की विविध मुद्राओं के द्वारा मन का असल रूप बाहर झांकता भी रहता है और दिखता भी रहता है।

प्रिय साधको!

तंत्र शास्त्र में कुछ अनुपाय प्रक्रियाएं बताई गई हैं। अनुपाय का अर्थ है किसी भी प्रकार के विशेष उपाय या आधार या आलंबन के बिना ध्यान में प्रवेश कर लो। हम जिस विधि की और जा रहे हैं यह मेरी दृष्टि से एक अनुपाय प्रक्रिया है।

एक अति पर से देखा जाए तो यह वास्तविकता भी है। धारणा जगत भले कल्पना पर आधारित हो पतंजलि कहता है कि जिस विषय पर ध्यान किया जाता है उस विषय पर मन को एकाग्र कर देना धारणा है। परंतु कुछ विधियाँ कुछ धारणाएं ऐसी भी हैं कि जहां चित्त को कोई आधार नहीं देना है। नहीं कोई कल्पना करनी है। नहीं कोई विशेष भाव करना है – एक अर्थ में धारणा के पड़ाव को छोड़कर सीधा ध्यान में स्थिर होना है। ऐसा होना भी संभव है। तंत्र शास्त्र में शिव साधक को धीरे धीरे उस ऊंचाई तक ले जान चाहते हैं कि जहाँ साधक मन को किसी भी प्रकार का आधार दिए बिना स्वयं के बल से वह स्थिरत्व में प्रवेश कर ले।

विधि कहती है कि साधक शयनासन में लेटकर एक वास्तविकता पर लक्ष्य दे कि चित्त निराधार है।

प्यारे साधको!

आपको प्रश्न उठ सकता है कि देह और चित्त निराधार है, ऐसा भाव करने से अथवा किसी भी धारणा का भाव करने से अर्थात मैं आनंद हूँ, शांत हूँ, ब्रह्म हूँ, प्रेम हूँ, ज्ञान हूँ, प्रकाश हूँ .. .. .. – ऐसी किसी भी धारणा से चित्त को प्रशिक्षित किए बिना अर्थात साधक को किसी भी विषय का आलंबन या आधार प्राप्त हुए बिना साधक कैवल पद को कैसे प्राप्त कर पाएगा?

प्रिय साधको!

मनुष्य मन में तीन स्थितियों में प्रश्न उठते हैं। एक तो वह, जब कोई कार्य नहीं करना चाहता है तब और दूसरा उसे कार्य करना है परंतु वह कैसे करना? यह तरीका समझ में न आ रहा हो तब। अथवा करने की क्षमता न हो तब।

प्यारे साधको!

यही बात साधना मार्ग में भी लागू होती है। मेरे पास कुछ लोग गलती से ऐसे आ जाते हैं कि उन्हें ध्यान में उतरना ही नहीं है। केवल प्रश्न करने हैं। उन्हें ध्यान भी पीज़ा और बरगर की तरह चाहिए। जंक फूड की भांति रेडीमेड। ऐसे लोगों के प्रश्नों को मैं सुनती ही नहीं हूँ या उड़ा देती हूँ। क्योंकि मुझे पता है कि वे यहाँ चेन्ज के लिए आए हैं ध्यान करना ही नहीं चाहते।

आपने शायद स्कूल लाइफ में देखा होगा कि जैसे कुछ डल स्टुडन्ट पढ़ाने में उत्सुक और उत्साही शिक्षक को भी कभी कभी फालतू

बातों में व्यस्त रखकर पढ़ाई का टाईम बरबाद कर देते हैं। और वास्तव में जिन्हें पढ़ना है उन लोगों का नुकसान होता है। परंतु मैं इतनी उदार बनना नहीं चाहती। हाँ, जो लोग कुछ करना चाहते हैं, ध्यान में उत्सुक हैं परंतु विधि समझ में नहीं आ रही है। ऐसे लोगों के साथ एक घटना हमेशा घटती है। ऐसे साधको के मन में प्रश्न उठते ही मेरी चेतना मुझे कुछ कहती है। और मेरे सत्संग प्रवचन के द्वारा उन्हें बिना पूछे जवाब मिलने लगते हैं। मुझे पता है कि साधक कहाँ अटक सकता है? कहाँ उलझन में पड़ सकता है? साधक की किस तरह से मुझे मदद करनी है? परंतु मूल बात यह है कि साधक सच्चा होना चाहिए। खैर!

अब फिर से आईए विधि की ओर। शरीर की हर मुद्रा एक मनोभाव को प्रगट करती है। मुद्रा दो प्रकार से आकार लेती है। एक आपको पता भी न हो और आपके देह की मुद्राएं बदलती जाती हैं। यह मन का प्रतिबिंब है। और सजगता के आभाव में शरीर की विविध मुद्राओं के द्वारा मन का असल रूप बाहर झांकता भी रहता है और दिखता भी रहता है। और समझदार लोग उन मुद्राओं के द्वारा आपको पढ़ भी लेते हैं।

दूसरा, आप सोच बूझकर इरादे के साथ शरीर की मुद्राओं को बनाते हो, यह आवश्यकता के अनुसार होता है। संसार से लेकर योग और सन्यास तक की मुद्राएं इस प्रकार की मुद्राओं में समाविष्ट होती हैं।

आजकल के पढ़ेलिखे लोग इन मुद्राओं को बॉडी लेन्वेज कहते हैं। आदमी की बॉडी लेन्वेज से पता चलता है कि आदमी कैसा है? आदमी अपनी बॉडी लेन्वेज से बता सकता है कि मैं कैसा हूँ और क्या चाहता हूँ? विविध प्रकार के पोश्चर अर्थात शरीर की बनती आकृतियों में बैठने उठने का ढंग, मुद्रा का थोड़ा बड़ा स्वरूप है। तंत्र और योग मुद्राएं

छोटी होती हैं। उसका परिणाम भी सूक्ष्म होता है और पोश्चर ज्यादा स्पष्ट और स्थूल।

प्यारे साधको!

केवल विधि को पकड़कर चलें तो मात्र दस ही वाक्यों में बात खत्म हो सकती है। शिव ने, पतंजलि ने और उपनिषद्कारों ने छोटे छोटे सूत्रों में एकाद दो पंक्ति में विधियाँ बता दी। परंतु आज वे सूत्र अद्‌भुत, सूक्ष्म, गूढ़ार्थपूर्ण और कल्याणकारी होने पर भी कठिन लग रहे हैं। और पूरी पूरी मदद नहीं कर सकते हैं। अच्छे अच्छे लोग सूत्र साहित्य को लेकर मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि मैया इसे जरा समझाइए। वे लोग प्रमाणिक हैं। ढोंगी लोग किसी से दिल खोलकर सलाह मशवरा नहीं कर सकते हैं।

दंभी आदमी सलाह चाहता है परंतु परदा रखता है और कहता है कि वैसे तो मुझे सब पता है, मैं तो खाली आपके विचार जानना चाहता हूँ। ये खाली वाले लोग बड़े खतरनाक होते हैं। ऐसे खालियों से दूर रहना, सजग रहना। ऐसे लोग बड़े स्वार्थी होने पर भी परोपकारी होने का दिखावा करते हैं।

संग ऐसे लोगों से रखना चाहिए जो स्पष्ट हों। दिल से नेक हों। कूट नीति या फूटफाट कराकर अपनी जगह कायम रखने वाला और जो सस्पेन्स पिक्चर का विलन जैसा हो कि जिसका पता अंत में चले और तब तक बहुत देर हो गई हो; ऐसे लोगों से दूर रहना। क्योंकि पिक्चर तो तीन घंटों का होता है और वह भी परदे पर परंतु जिन्दगी तो बहुत लंबी है और वास्तविक भी। जागते रहना ऐसे खाली लोगों से। ऐसे खाली लोग आपका दिमाग, तिजोरी और रिश्ते सबकुछ खाली कर देते हैं।

प्यारे साधको!

मुद्राओं को पढ़ना सीखना और अपने शरीर की मुद्राएं बनने लगें तो सजगता से उसे भी जानना और समझना कि शरीर कुछ कहना चाहता है, शरीर कुछ करना चाहता है, शरीर कुछ मांग रहा है; वह क्या है? मन की चालबाजियाँ हैं या सत्य है? उचित है या अनुचित? मुद्राएं क्या चाहती हैं? भोजन, आराम, शांति, निद्रा, दवाई, प्रेम या छलना! भूख लगी है तो बॉडी लेन्वेज से पता चल जाएगा। आंखें कुछ ढूंढेंगी। आदमी किचन के आसपास टहलने लगेगा। नींद आती है तो शरीर उबासियाँ भरने लगेगा। आराम चाहता है, तो हाथ पैर लंबे होने लगते हैं वे खुद को टिकाने के लिए कुछ आधार ढूंढने लगते हैं, वे किसी भी चीज को तकिया बना लेता है।

दोस्तो, बात बड़ी स्वाभाविक लग रही है परंतु इतनी साधारण बात के प्रति मनुष्य लक्ष्य नहीं देता। जब जहाँ जिसके प्रति लक्ष्य देना चाहिए उस तरफ अगर मनुष्य ध्यान देने लगे तो उसके आधे प्रश्न अदृश्य हो जाएंगे परंतु आदमी इतना दक्ष नहीं है, सजग नहीं है। न उसे स्वयं की बॉडी लेन्वेज के बारे में पता होता है, न दूसरों की बॉडी लेन्वेज को ठीक से समझ सकता है। स्वयं को क्या चाहिए उतना भी जिसे न पता चलता हो? वद दूसरों को कैसे समझ पाएगा!

प्यारे साधको!

बात काम करने की या मदद करने की या मेहनत मजूरी करने की नहीं है। बात है मनोविज्ञान की, बात है समझ की, बात है सजगता की। मेहनत मजूरी तो गधे भी कर लेते हैं। कुत्ते भी बॉडी लेंगवेज समझ लेते

हैं परंतु आदमी कभी कभी पशु से भी गए बीते जैसा व्यवहार करता है। तब छोटी सी बात को ज्यादा विस्तार करके समझानी पड़ती है।

कुछ छोटी छोटी बातें ऐसी होती हैं कि अगर एक बार आदमी उसके प्रति सचेत हो जाए तो उसके आध्यात्मिक विकास में भी बातें सहाय रूप बन सकती हैं। क्योंकि अध्यात्म का चरम लक्ष्य तो है – परमजाग्रति।

तंत्र शास्त्र में शिव कहते हैं कि शैयनासन में स्थिर होकर समझो कि चित्त और देह निराधार है। बात भी सही है। और किसी भी स्थिति में ऐसी धारणा करने को नहीं कहा, क्यों? जब आदमी दौड़ रहा है, भाग रहा है, किसी की प्रतीक्षा कर रहा है या कुछ ऐसा काम कर रहा है कि जहाँ पर वह किसी और पर निर्भर है। जैसे कि किसीके सिग्नेचर की जरूरत है, किससे चैक पास कराना है, किसीसे ऑर्डर लेना है या देना है... ऐसी स्थितिओं में उसे लाख समझाओ कि तुझे किसीके अवलंबन की जरूरत नहीं है, किसीके आधार की, किसीके सहारे की जरूरत नहीं है तो वह आपकी बात को नहीं स्वीकारेगा। बात गलत सिद्ध हो जाएगी। मैं कहती हूँ कि विपरीत परिस्थितियों में बताई गई सत्य बात भी झूठी साबित हो जाती है। वह प्रभावक नहीं बन सकती। बात का मज़ा बिगड़ जाता है। उसका असर नहीं आता।

प्यारे साधको!

शिव ने यह सब वर्णन भले नहीं किया परंतु शैयनासन शब्द प्रयोग करके यह विधि नितांत एकांत और आराम की क्षणों में करनी है। तभी वह ध्यान की भूमिका तक पहुँच पाएगी। शिव को ज्यादा विस्तार

करने की जरूरत नहीं थी क्योंकि सामने जो साधिका बैठी थी वह बहुत ऊँची समझवाली, सजग, प्रेमपूर्ण तथा ध्यान को समर्पित थी।

एक अति पर साधिका नहीं यह सिद्धाणी थी। तो शब्द के भावार्थ अथवा गूढार्थ या ज्ञानार्थ का इशारा किस बात की ओर है यह तुरंत समझ सकती थी। वह शिष्या बनकर बैठी थी और शास्ता से उसकी इतनी निकटता थी, इतनी आत्मीयता थी कि उसका शिव की वाणी से तदात्म्य हो जाता था, वह सुनते सुनते ही ज्ञानरूप बन जाती थी।

दोस्तो, आज लोगों की ज्ञानीजनों से इतनी आत्मीयता कहाँ! आध्यात्मिक रूप से इतनी परिशुद्धता और निकटता कहाँ? इतनी आस्था, नि:संशयात्मकता और तल्लीनता कहाँ? आज का तथाकथित साधक तो जैसे बैंगन खरीदने के लिए चार ठेलों पर भावताल कराता है वैसे ज्ञान के लिए भी धर्म, संप्रदायों की दुकानों पर भटकता है। उसे शुद्ध या उत्तम चीज नहीं चाहिए, सबकुछ सस्ते में चाहिए। ऐसे लोगों के बीच में रहकर भी धैर्य के साथ, उदारता के साथ और करुणाभाव से सच्चे ज्ञानपिपासुओं की प्रतीक्षा करने में शास्ता की भी अग्नि परीक्षा हो जाती है। खैर!

खोजिओं की बात अलग है। गुरू दत्तात्रेय ने चौबीस गुरू किए थे और बुद्ध इक्कीस गुरुओं के पास रहे थे। परंतु आज ऐसे प्रमाणिक खोजी कहाँ? छोड़ो।

फिर से आईए विधि की ओर। शिव कहते हैं कि शयनासन में स्थिर होकर दृढ धारणा करो कि चित्त और शरीर निरालंब है। बात बड़ी प्यारी है। शयनासन का अर्थ यह है कि अब आदमी सारे झंझटों से मुक्त होकर एक स्वतंत्रावस्था में आया। वह भले कुछ ही घंटों के हो। परंतु शयनासन में जाना, सोने के लिए जाना अर्थात एक ऐसी अवस्था कि अब

कुछ घंटों के लिए सारी दुनियाँ से छुटकारा। जिम्मेदारियों से छुटकारा। श्रम से छुटकारा।

शयनासन में साधारण से साधारण आदमी राजाओं का राजा होता है। क्योंकि तब वह कुछ घंटों के लिए अपनी स्वतंत्रता में है। तब वह अपने को मुक्त अनुभव करता है। शिव का कहना है कि इस क्षण में यदि मनुष्य चाहे तो वास्तविक मुक्ति के क्षण में प्रवेश कर सकता है।

प्यारे साधको!

आप जब सोने जाते हो, केवल आप, बीबी, बच्चे, परिवार के सदस्य, मित्र आदि कोई भी नहीं आपके आस पास; और आपके मन में केवल आप ही। कोई मनोभार नहीं, कोई योजना नहीं। मात्र आप .. आप और आप। अगर कोई संग है तो आपका एकांत, आराम और शांति। तब आप चाहो तो ज्ञान में प्रवेश कर सकते हो।

कैसे? क्योंकि तब आराम के कारण एक प्रसन्नता का अनुभव होता है। एक शांति का अनुभव होता है। वहाँ फिर बिस्तर कैसा है? यह बात ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। भले आप रेत के ढेर पर या धरती पर लेटे हो अथवा साधारण आसन पर परंतु आपके पास स्वतंत्रता की फीलिंग होनी चाहिए। यह अनुभूति के क्षण ही आपको परमावस्था तक पहुंचा सकते हैं।

बिस्तर खाट का हो या टाट का परंतु सोने वाला खुश होना चाहिए। महलों के पलंगों के गूंगे रूदन मनुष्य को शांति नहीं दे सकते।

मैंने हमारे सौराष्ट्र के बगडालम ऋषि के बारे में किसी संत के पास से सुना था कि वे ऋषि एक वृक्ष के नीचे रहते थे, गरमियों में सूरज की कड़ी धूप से बचने के लिए घास का पुवाल रखते थे, जहाँ जरूरत पड़े

वहाँ धूप से पुवाल को आड़ा रख देते थे। एक बार सर्दियों के दिनों में एक राजा उनके पास आया और अहंकार के स्वर में कहने लगा कि महाराज! मैंने सुना है कि आप बहुत परेशान हो रहे हो आपके पास एक झोंपड़ी तक नहीं है। मैं आपको एक अच्छा सा आश्रम बना दूं और अन्य कोई सेवा की जरूरत है तो भी बताईए। ऋषि ने कहा कि पहली बात तो यह है कि तूने गलत सुना है। मैं बिलकुल परेशान नहीं हूँ। बल्कि तुझसे ज्यादा प्रसन्न हूँ क्योंकि मेरी आवश्यकताएं कम से कम हैं। दूसरी बात यह है कि आश्रम की बात भूल जा और तीसरी बात यह है कि अगर तू मेरी मदद कर सकता है तो थोड़ा दूर हट जा क्योंकि तू सूरज की किरणें और मेरे बीच में बाधा बन रहा है। सुना है कि फिर से वह राजा उस महात्मा के पास कभी नहीं गया। क्यों जाएगा? आखिर सत्ताधीश ठहरा। राजा, महाराज, नेता अकसर अजाग्रत होते हैं। कोई सजग मनुष्य होता तो ऐसे फकीर का संग और सत्संग कभी नहीं छड़ता।

मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि हवेलियों में या रेश्मी मखमली बिस्तरों से शांति या सुख नहीं है। अगर सुख है भी, तो वह शाश्वत नहीं है। वास्तविक सुख तो मनुष्य के भीतर पड़ा है। मैंने ऐसे धनवानों को देखा है कि आंगन में चार गाड़िया पड़ी हैं परंतु बुढ़ापे का मारा खुद चला न सकता हो और विश्वसनीय ड्राइवर मिल न रहा हो। शायद इस वास्तविकता को समझकर ही रोबिन शर्मा को "द मॉन्क सोल्ड हिस फरारी" नोवेल लिखने की प्रेरणा मिली होगी।

मनुष्य का मस्तिष्क जब शांत हो तब सुख। वह जब स्वतंत्र हो तब सुख।

आर्यावर्त के रघु और भरत जैसे जागे हुए सम्राटों ने मखमली कालीन और बिस्तर छोड़कर भगवे धारण करके वृक्ष के नीचे ज़मी का बिछोना और आसमान की चद्दर ओढ़कर परमपद में प्रवेश कर लिया था। मेरे कहने का हेतु सिर्फ इतना ही है कि चीजों को इतना महत्व मत देना कि आप इस तरह से सुख के गुलाम बन जाएं कि सही अर्थ में कभी सुखी न हो पाएं।

जहाँ जैसी भी सुविधा हो उसका सहज स्वीकार कर लेना। आपको मिली हुई सुविधा को आप जब प्रेम से स्वीकारेंगे तब वह आपको वास्तव में सुख और शांति देने वाली बन जाएगी। महत्व मानसिकता का है, स्वीकार भाव का है वस्तु का नहीं।

प्यारे साधको!

अब उतरो विधि में। जब भी आप नितांत अकेले, शांत, प्रसन्न और स्वतंत्रता तथा निर्बाध्य स्थिति में शयनासन में जाओ अर्थात आपका शरीर सोने की जगह पर आराम से लेट जाए, चित्त जब शांत हो और जब आप भीतर से एक वास्तविक सुख, शांति और आराम का अनुभव करो तब दृढ़ धारणा करो कि मेरा चित्त और शरीर को किसी के आधार की अर्थात अवलंबन की जरूरत नहीं है। मेरी चेतना परम स्वतंत्र है। और शरीर भी निरालंब है। मैं किसी पर भी निर्भर नहीं हूँ। यह विराट अस्तित्व जैसे परम स्वतंत्र है वैसे ही मेरा शरीर भी स्वतंत्र और आत्मनिर्भर है। मैं चीजों का, स्त्री का, पुरुष का, प्रतिष्ठा, या किसी भी प्रकार की वासनाओं का गुलाम नहीं हूँ। मैं निद्राधीन हो जाऊंगा तब तो देह अकेला ही पड़ा रहता है और चेतना साक्षी। इसका अर्थ यह हुआ कि बंधनों ने मुझे नहीं बांधा है,

मैंने बंधनों को खड़ा किया है। व्यवस्थाओं को मैंने बंधन मान लिया है। वास्तव में मैं मुक्त हूँ।

प्रिय साधको!

सोते वक्त ऐसा तीव्र भाव करने से वासनाएं बहुत जल्दी क्षीण हो जाएंगी और आपमें स्वप्रकाश का प्रगटीकरण होगा। अध्यात्म की उच्चतम भूमिका जो ज्ञानी पुरुषों के लिए भी अवर्णीय है और दुर्लभ है ऐसी भूमिका को कैवल पद कहते हैं। आपका उसमें प्रवेश हो जाएगा।

प्यारे साधको!

अब यह मत पूछना कि कितने दिन में घटना घटेगी। कबीर कहते हैं कि "पल में परलय होत है" कबीर ने एक अलग संदर्भ में कहा है परंतु मैं कहती हूँ कि वासनाओं का प्रलय एक क्षण में भी घट सकता है अथवा लंबे अभ्यास की आवश्यकता भी। परंतु कम से कम नब्बे दिन तक विधि का अभ्यास तो अवश्य करो।

जब अभ्यास आरंभ करो तब आपका मन संतुष्ट शांत और स्थिर होना चाहिए। शरीर शयनासन में होकर आराम का अनुभव करना चाहिए। माहौल में किसी भी प्रकार का विक्षेप नहीं होना चाहिए। पत्नी और बच्चे आपकी कंपनी माँग रहे हैं तो उनसे अविरोध का माहौल बनाकर बाद में साधना में उतरना।

दोस्तो, विक्षेप बाहर का हो या भीतर का। दोनों के पार जाना जरूरी है। भीतर का विक्षेप ज्यादा खतरनाक है। परंतु उसका एक फायदा भी है। फायदा यह है कि उससे मुक्त होना केवल आपके हाथों में है। जिसे आप साधना की तीव्रता से दूर कर सकते हैं। परंतु बाहर का विक्षेप दूसरे लोग पैदा करते हैं। उन उपद्रवों से कैसे निपटा जाए या माहौल कैसे

बदला जाए ? वह आपको अपनी विवेक बुद्धि से तय करना है। ऐसे प्रश्न लेकर गुरू के पास नहीं जाना है। क्योंकि घर आपका है, पत्नी आपकी, संतान आपका, संसार आपका और आपका ही खड़ा किया हुआ बंधन सबकुछ आपका है तो आपके मुक्त होने का मार्ग भी आप ही ढूंढो। दोस्तो, मार्ग है। और खोज करेंगे तो वह मिलेगा।



धारणा - 97

संसार असार भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 97

ज्ञान क्रिया अरु देह को धर्मा, बरु तेहि में विशेष नहीं मर्मा।
चैतन्य की है सत्ता शाश्वत, जे कबहुं बने नहीं नाश्वंत।।

ध्यान विधि - 97

ज्ञान, क्रिया और शरीर के अन्य धर्मों में विशेष कुछ भी नहीं परंतु केवल चैतन्य की ही सत्ता है - ऐसा भाव करके गहन ध्यान को उपलब्ध हो जाओ ।



वास्तव में ज्ञानी पुरुष को सत-असत दोनों के पार चले जाना है। सार का आग्रह छूट जाएगा फिर असार बाधा रूप नहीं बनेगा। रंगमंच का केवल आनंद लो। लीला भूमि पर अपनी भूमिका अदा करते करते भी सजग रहो कि यह सब निरर्थक है। बस, इतनी समझ से ही सार्थकता हाथ लग जाएगी।

प्रिय साधको!

हम एक सुंदर और अद्‌भुत ध्यान विधि की ओर जा रहे हैं। इस ध्यान विधि में साधक को ऐसी धारणा करनी है कि मुझे जो कुछ भी ज्ञान है, मैं जो कुछ भी क्रियाएं कर रहा हूँ और इस शरीर के जितने भी धर्म हैं उसमें कुछ विशेष नहीं है। शाश्वत सत्ता तो चैतन्य की ही है। कोई अदृश्य शक्ति सबका संचालन कर रही है। जो कुछ भी हो रहा है – मेरे द्वारा, कि विश्व में; उसके पीछे एक विराट सत्ता क्रियांवित है। जिसका कभी नाश नहीं है। बाकी सबकुछ नाशवान है। ऐसी तीव्र धारणा करके साधक मोक्ष की अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

यहाँ मुझे पुराण के एक अद्‌भुत पात्र योगी भरत का स्मरण हो रहा है। उसने एक मृग शावक को बचाने के लिए एक मानवीय प्रयास किया परंतु वह मानवता मानवता तक सीमित न रहकर आसक्ति में रूपांतरित हो गई और योगी को मृग शरीर में जन्म लेना पड़ा।

प्रिय साधको!

यहाँ मेरा संदर्भ जन्म, पुरर्जन्म, कर्मफल आदि से नहीं है। मैं केवल ध्यान विधि की ही बात करना चाहती हूँ। परंतु विधि समझने में दृष्टांत उपयोगी है और मेरा एक प्रयास हमेशा रहा है कि पूर्व के दृष्टांतों से साधक सहजता से बात को समझ सकता है तो पाश्चात्य अथवा अन्य संस्कृतियों से दृष्टांत उधार लेने की ज्यादा जरूरत नहीं है।

ज्ञानियों में भी दो प्रकार के लोग होते हैं। एक बौद्धिक ज्ञानी होता है और दूसरा आध्यात्मिक। पहले प्रकार का ज्ञानी समूह को प्रभावित करता है। सबको प्रभावित करने के लिए दुनियाँ भर के जाने अन्जाने पात्रों की बातें करते रहते हैं। और दूसरे प्रकार के ज्ञानी अपने इर्द गिर्द की जानी पहचानी सरल, सहज, सपाट बातों से सीधी अभिव्यक्ति और गहन सत्संग के द्वारा मनुष्य को जगा देता है। पहले प्रकार का ज्ञानी मस्तिष्क से नए नए अखबारों की भांति भरा हुआ होता है। और दूसरे प्रकार का ज्ञानी अंतर प्रकाश से।

दोस्तो, हीरे-मोती पास में पड़े हैं तो दूर तक जाने की क्या जरूरत? भारत का साहित्य इतना प्रचूर है कि काफी रत्न आसानी से हाथ में आ जाते हैं।

प्रिय साधको!

मेरे पास एक वैश्विक चित्त है और मैं वैश्विक ध्यान विधियों पर काम कर रही हूँ तथा पूरे विश्व को ध्यान के लिए प्रेरित कर रही हूँ। परंतु मैंने भारत भूमि में शरीर धारण किया। मैं जानती हूँ कि ज्ञान दृष्टि से सबकुछ निरर्थक है परंतु ज्ञान दृष्टि प्राप्त होने तक कुछ निरर्थकताएं भी बहुत उपयोगी हैं। उसमें ही उसकी सार्थकता है। भारत विश्वगुरू रहा है।

विश्व में ज्यादा से ज्यादा आध्यात्मिक मार्गदर्शन अगर किसी भी राष्ट्र ने किया है तो यह भारत ने किया है। भारतभूमि रत्नगर्भा है। यहाँ अनेक मनीषी जन्म लेते रहे हैं। उन्हें ज्ञानी बनना नहीं पड़ता, कुछ तो जन्म सिद्ध ज्ञानी होते हैं। ऐसी वसुन्धरा पर प्रगट होने का मुझे आनंद है। मेरा प्रयास भी रहा है कि भारतीय साहित्य में से जब तक उदाहरण का स्मरण हो जाए तो मुझे रसेल या मिल्टन की बात करनी जरूरी नहीं लगती है। सिग्मन्ट फ्रोइड वात्स्यायन से आगे नहीं जा सकता। टैगोर की गीतांजलि पढ़ लो तो फिर वड्र्सवर्थ की ज्यादा जरूरत नहीं है। भारत के पास एक खोजी व चिंतनप्रधान मानस है। उसे जो चाहिए वह ढूंढ लेता है। मैं चाहती हूँ कि विश्व में जब मेरा साहित्य पढ़ा जाए तब अन्य राष्ट्र के लोग नेट पर भले खोजें कि ऋषि बगडालम कौन थे? योगी भरत कौन था? मीरा, अखा, नरसिंह मेहता, पानबाई और सती तोरल कौन थी? और उसके आध्यात्मिक जीवन से परिचित हो जाएं।

प्यारे भक्तो!

अब आईए ध्यान विधि की ओर। विधि कहती है कि ज्ञान, क्रिया, और देह के धर्म इन सबमें कुछ खास नहीं है। शाश्वत सत्ता चैतन्य की है जिसका कभी नाश नहीं होता।

बात बिलकुत सही है। वेदांत भी यही कहता है। यहाँ ज्ञान का संबंध बुद्धि से है, स्मृति से है। क्रिया का संबंध शरीर और इन्द्रियों से है। मन का संबंध संस्कारों से है। संस्कार तो माहौल के अनुसार बदलते रहते हैं। और माहौल के साथ मन भी बदलता रहता है। शरीर का संबंध पदार्थों से है। जो नाश्वंत है। तो इनमें से किसे शाश्वत समझें? बात भी ठीक है।

दोस्तो, शिव की वाणी बुद्धि गम्य नहीं अनुभव गम्य है। प्रत्येक प्रज्ञावान पुरुष की वाणी अनुभूति के बाद ही प्रवाहित होती है और साधक के प्रति प्रेम और करुणावश सहजता से बहकर उसके हृदय को प्लावित कर देती है।

मेरे साहित्य में भारतीय शास्त्रों और पुराणों के विशेष दृष्टांत आने का एक दूसरा भी कारण है। मैंने इन विषयों पर करीब चालीस वर्ष तक अभ्यास और सत्संग किया है। इतना ही नहीं मेरे हाथ में जब खिलोने पकड़ने की उम्र थी तब लोग जिसे पीएच.डी. में पढ़ते हैं वैसे महाग्रंथो का थमा दिया था। मैं पढ़ती थी, माँ सुनती थी। वे क्षण अद्‌भुत थीं। जो मेरे भीतर सम्यक स्मृति बनकर रह गई हैं। अगर वह माता नहीं होती तो आज शायद ऐसे ग्रंथों का सर्जन होना कठिन हो जाता। बचपन में उन ग्रंथों को पढ़कर कभी कभी मुझे बहुत बोरिंग फील होता था। मुझे उन ग्रंथों की कुछ बातें स्वीकृत नहीं थी। परंतु माँ के संतोष के लिए सबकुछ पढ़ देती थी। उस पढ़ने के साथ साथ सूक्ष्म रूप से मेरे साथ एक दूसरी घटना भी घटती रही और वह मुझमें धर्मक्रांति को जन्म दे गई। बचपन में एक बार मेरी माँ ने मेरे हाथ में भागवत पुराण थमा दिया। तब शायद में तीसरी कक्षा में पढ़ती थी। तब माँ ने कहा कि तुझे संस्कृत पढ़ना भले न आए तू श्लोकों को छोड़ देना, केवल गुजराती अनुवाद पढ़। तो वैसे तो उस ग्रंथ की बहुत सारी बातें मुझे भा गई थीं। परंतु दो प्रसंगो ने मुझे बदल दिया इनमें से एक प्रह्लाद और नृसिंह अवतार का संवाद और दूसरा योगी भरत और राजा रहुगण का संवाद। भगवान नृसिंह हिरण्यकश्यपु के वध के बाद प्रह्लाद पर प्रसन्न होकर कुछ मांगने के लिए कहते हैं। तब प्रह्लाद के जवाब से ऐसा बिलकुल नहीं लग रहा है कि एक बच्चा बोल रहा है, परंतु ऐसा लगता है

कि एक स्वयं सिद्ध, आत्मप्रतिष्ठत प्रबुद्धात्मा भगवान नृसिंह से बात कर रहा है।

प्रह्लाद कहता है कि हे प्रभु! आप मुझे कुछ मांगने के लिए तो कह रहे हैं परंतु मैं क्या मांगूं?

इन्द्रियाणी मनप्राण आत्मधर्म ध्रृतिर्मतिः
ह्रीः श्री स्तेजः स्मृतिः यस्य नश्यंति जन्मना।

इन्द्रियाँ, मन, प्राण, आत्मा, धर्म, धैर्य, बुद्धि, ऐश्वर्य, धन, तेज और स्मृति आदि का अंत में तो नाश ही है अर्थात जो शाश्वत नहीं है उसे मांगकर मैं क्या करू? और जब सामने शाश्वत प्रगट हो गया है तो नाश्वंत की मांग क्यों करूं? दोस्तो, क्या संसार असार भाव ध्यान में डूबे बिना ऐसे सत्य का उच्चारण संभव हो सकता है?

प्यारे साधको!

यहाँ मेरे लिए प्रह्लाद और शिव में कोई भेद नहीं है। प्रह्लाद भले भक्ति मार्ग से थे परंतु मेरी दृष्टि से वह शिवावस्था को उपलब्ध हो गए हैं। शिव और प्रह्लाद दोनों समान सत्य पर पहुंच गए हैं। दोनों ने मर्म को जान लिया है। दोनों एक आध्यात्मिक निष्कर्ष पर पहुंच चुके हैं। संवाद के पात्र भले अलग अलग हों परंतु बात शाश्वत है।

शिव पार्वती के लिए अत्यंत प्रेमपूर्ण और करुणापूर्ण हैं। दोस्तों, मर्म उसे ही बताया जाता है जिस पर प्रेम और भरोसा हो तथा जिसकी पात्रता हो। शिव तो पार्वती को मर्म बता रहे हैं परंतु प्रह्लाद तो भगवान के सामने मर्म की बात स्वयं कर रहा है।

हम बात योगी भरत की कर रहे थे। भरत का दृष्टांत इस ध्यान विधि को समझने के लिए आपको सहायभूत हो सकता है। कोई उत्तम

चीज अगर हमारे घर मे है तो हम उसके लिए पड़ोसी के घर मांगने के लिए क्यों जाएं? जिन्हें पता नहीं कि उनके घर में क्या है? वे अनजाने में पड़ोसी के पास या दूर तक चीजें लेने जाता है। पश्चिम के उदाहरणों को और पात्रों की बातें करने की भारतीय चिंतकों में एक फैशन चल रही है।

मैं कहती हूँ कि अच्छी चीज कहीं से भी लो। अच्छाई तो अच्छाई है, अच्छाईयों को जानने में संकुचित नहीं बनना चाहिए। परंतु यह भी कह रही हूँ कि घर के मूल्यवान खजाने का विस्मरण भी मत करो। मुझे मेरा काम भारत में रहकर करना है। मेरा ध्येय डॉलर इकट्ठे करना नहीं है। न विदेशी शिष्यों की भीड़ जमा करना। क्योंकि वह सब निरर्थक है। मुझे तो ऐसे साधक चाहिए कि जो मुझे पकड़ न लें परंतु मैं उनके लिए एक सेतु बन जाऊं। वे मुझसे गुजरकर ध्यानविश्व में प्रवेश कर लें। और इसी वजह से मैंने मेरी विद्यापीठ का नाम "ध्यान पीठ" रखा है।

नालंदा और तक्षशिला की तरह आज फिर से मुझे लग रहा है कि मनुष्य को और विशेष रूप से युवा धन को आध्यात्मिक रूप से जगाने के लिए और ओजस्विता और तेजस्विता में उन्हें पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए हमारा कार्यान्वित होना अनिवार्य हो गया है।

दोस्तो, ज्ञान के द्वारा ज्ञान के पार, कर्म के द्वारा और शरीर के द्वारा ही शरीर और मन के पार जाने की कला है – ध्यान। यह कला मनुष्य हासिल करेगा ध्यान ग्रंथो से, ध्यान विश्वविद्यालयों से, ध्यान गुरुओं से, ध्यान प्रेम से और ध्यान से।

प्यारे साधको!

अब संसार असार भाव ध्यान विधि को समझने के लिए योगी भरत और राजा रहुगण, जो एक ज्ञान सिद्ध अवधूत और एक मुमुक्षु के

बीच का संवाद है उसे मेरी ही काव्य बानी में इसलिए बता रही हूँ कि संस्कृत की जगह ये हिन्दी छंद और चौपाईयाँ समझना आपके लिए सरल हो जाए –

मोह महा मृग शावक मांही, तासे मृगरूप जन्मा तांही।।

उसका अति मोह हिरण के बच्चे में होने के कारण वह वहीं हिरण के रूप में जन्मा।

पुण्य कर्म से स्मृति तेहि रहहुं, पूर्व जन्म को नित ते स्मरहुं।।

परंतु पुण्य कर्म के कारण उसकी स्मृति अखंड थी तथा नित्य पूर्व जन्म के स्वयं के योगी स्वरूप का स्मरण रहता था।

अहहुं दैव मैं योगी आत्मा, कैसी पीड़ा ये परमात्मा।।

अरे रे विधाता! मैं तो योगी आत्मा! हे परमात्मा ये कैसी पीड़ा!

भ्रष्ट भया मम ज्ञान अरु ध्याना, कैसा आसक्ति अज्ञाना।।

मेरा ज्ञान और ध्यान भ्रष्ट हुआ, ये कैसा अज्ञान और आसक्ति।

आत्मा योगी देह हिरण का, रहा निःसंग जन्म सब मृग का।।

उसका आत्मा योगी का और शरीर हिरण का था जिसके कारण उस हिरण देह का आयुष्य पूरा हुआ तब तक वह निःसंग रहा।

मृग शरीर छांडी पुनि आवा, ब्राह्मण गृह देह नव पावा।।

और फिर हिरण का शरीर छोड़कर ब्राह्मण के घर नया देह प्राप्त किया।

जानबूझकर मूढ की भांति, वर्तन करहुं ते दिर राति।।

परंतु मुक्त होने के लिए वह जानबूझकर सभी के साथ दिन–रात मूढतापूर्वक वर्तन करता था।

नहीं संवाद कोउ वाद विवादा, मौन था मन में सदा विशादा।।

किसी के साथ संवाद या वाद-विवाद न करते हुए हमेशा मन में विशाद सहित मौन रहता था।

गायत्री मंत्र भी नहीं बोलहूं, मन की बात न किसी से खोलहुं।।

कभी गायत्री मंत्र भी नहीं बोलता था और किसी के साथ मन की बात भी नहीं करता था।

सब परिवार ने पागल माना, मूढ मंद मति पुत्र को जाना।।

इस पुत्र को सभी परिवारजनो ने मूढ, मंदबुद्धि और पागल समझ लिया।

घर अरु खेत में काम ना आयउं, सबने कहा गृह छांडी जायउ।।

वह घर या खेत के किसी काम में नहीं आता था इसलिए सबने उसे घर छोड़ देने को कहा।

बंधन छूटा मानि गृह त्यागा, सहज मस्ती से विहरने लागा।।

बंधन छूय गया ऐसा मानकर गृहत्याग करके सहज मस्ती में आनन्दपूर्वक विहार करने लगा।

एकबार तेही बलि के हेतु, पकड़ा शूद्र ऋषभ कुलकेतु।।

एक बार शूद्रोंने बलि चढ़ाने के हेतु से ऋषभकुल श्रेष्ठ भरतजी को पकड़ा।

चंडिका ने भक्त बचाया, कुंडलिनी रूप माँ को ते ध्याया।।

परंतु उसने कुंडलीनि स्वरूपा जगदंबा का ध्यान लगाया और माँ चंडिका ने उसे बचा लिया।

पुनि ते मस्त कलंदर निकला, रहुगण के नौकर थे विकला।।

फिर वो मस्त कलंदर आगे बढ़ा, रास्ते में रहुगण राजा के नौकर परेशान थे।

पालकी में था नृप बिराजा, एक कहार से होइ न काजा।।

पालकी में राजा रहुगण बिराजित थे और एक पालकी उठाने वाला कहार किसी कारण से पालकी उठा सके ऐसी अवस्था में न था।

अनायास ही द्विजवर मिलहुं, पकडी कहे पालकी उठायहुं।।

आनायास ही ब्राह्मण भरत मिले और सैनिको ने उन्हें पकड़कर कहा कि पालकी उठाओ।

बिनु विवाद ते कार्य में लागा, बरु मन हिंसा से दूर भागा।

किसी भी विवाद के बिना भरतजी कार्य में लग गए परंतु मन हिंसा से दूर भागता था।

जीव जंतु ते बचावन चहहुं, बार बार तेहि कारण कूदहुं।।

उनके पग तले कोई जीव जंतु कुचल न जाए ऐसी इच्छा के कारण वे बार बार कूद रहे थे।

भरत अहिंसा हेतु कूदे जब, पालकी रहुगण सर लागे तब।।

भरतजी अहिंसा के हेतु से जब जब कूदते तब तब राजा रहुगण का मस्तक पालकी से टकराता था।

रहुगण कहे कटु तब वचना, सुना भरत बरु दुख नहीं मना।

तब रहुगण ने कड़वे वचन कहे परंतु उन वचनो को सुनकर भरतजी दुःखी नहीं हुए।

रहुगण उवाच

दोहा

हे जड़ मृत्यु भय न तोही, मैं राजा हूं देख।
क्यों नहीं ढंग से सेवत है, डांटा मूढ तेहि लेख।।

रहुगण बोले, " हे जड़! तुझे मृत्यु का भय नहीं? देख, मैं राजा हूँ, सेवा बराबर क्यों नहीं करता?" - इस प्रकार उसे मूढ समझकर डांटा।

चौपाई

संत हृदय अति करुणाकारी, रहुगण प्रति भइ दया अपारी।।

संत हृदय अत्यंत करुणाकारी होता है। उन्हें राजा रहुगण के अज्ञान पर अपार दया उत्पन्न हुई।

मूढ कौन है कैसे बतायउं, नृप हित सत्य वचन मैं कहहुं।।

उन्होंने विचार, "मूढ कौन है, ये कैसे समझाऊं? परंतु राजा के हित में मैं सत्य वचन जरूर कहूंगा।"

हो बड भाग तो संत कोऊ मिलहीं, बड़भागी ही सत्संग लहहीं।।

यदि भाग्य महान हो तो ही संत मिलता है और महान भाग्यवान को ही सत्संग प्राप्त होता है।

योगी ने जेहि भार उठाया, तेहि उद्धार हृदय में ठांया।।

योगी ने जिसका भार अपने कांधे पर उठाया था उसका उद्धार करने का निर्णय किया।

छंद

सुन नृप प्रथम तव वचन सत्य है जड़ शरीर मैंने धरा।
बरु मृत्यु का भय नहीं मुझको जन्मा जग में सो मरा।

राजा तू है ये भ्रम है तेरा ये लीला ईश्वर करा।
स्वामी सेवक नहीं नाता क्रोध से मन क्यों भरा?

योगी बोले, "हे राजन! तेरा पहला वचन तो सत्य है, मैंने जड़ शरीर धारण किया है परंतु मुझे मृत्यु का भय नहीं है। क्योंकि जगत में जो जन्म लेता है वो मरता है। हे राजन! "तू राजा है" यह तेरा भ्रम है; क्योंकि ये सब लीला तो ईश्वर की है। और हाँ! हमारे बीच में सेवक और स्वामी का संबंध भी नहीं है तो क्रोधायमान क्यों होते हो?"

सुनि शब्द समजी सार को, रहुगण मन विस्मय भया।
उतरी धरा पै किये दर्शन, विनय से पद गही लिया।
रवि शशि अग्नि वरुण यम शिव से मैं निर्भय नित भया।
अपमान हो नहीं द्विज का ये नाथ मैंने प्रण लिया।

शब्दों को सुन उनका सार समझते हुए रहुगण के मन में आश्चर्य हुआ। वे पालकी में से धरती पर उतरे। भरतजी के दर्शन किये और विनय से पैर पकड़ लिये और बोले, "हे नाथ! मैं सूर्य, चंद्र, अग्नि, वरुण, यम और शिव से भी निर्भय हूँ। परंतु कभी मेरे द्वारा ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण का अपमान न हो जाए; ऐसी मैंने प्रतिज्ञा ली है।"

दोहा

नाथ आप नहीं मूढ हो, क्षमा करो अविवेक।
परम ज्ञानि निज मति कहे, करहुं कृपा हो विवेक।।

"हे नाथ! आप मूढ नहीं हैं, मेरे अविवेक के लिए मुझे क्षमा करें। मेरी बुद्धि ऐसा कहती है कि आप परम ज्ञानी हैं। यदि आप मुझ पर कृपा करें तो मुझे विवेक की प्राप्ति होगी।"

परम अनुग्रह तब भया, बचन ज्ञान रस भीना।

दिया ज्ञान योगी भरत, नृप श्रवण में लीना।।

इस वचन से भरतजी का परम अनुग्रह उतरा और ज्ञानरस से तरबतर वचनों में योगी भरत ने उपदेश दिया, उस श्रवण में राजा तल्लीन हुआ।

छंद

सुनु तर्क वितर्क से कोई जन नहीं ज्ञानी होत है।
नहीं तत्व ज्ञानी यह जगत को सत्य रूप से जोत है।
वहेवार लौकिक वैदिकादि नहीं सत्य कछु लोक है।
यज्ञादि या उपनिषद् वाक्य ज्ञान बिनु सब फोक है।।

हे राजन! सुन, तर्क-वितर्क से कोई व्यक्ति ज्ञानी नहीं बन सकता। तत्वज्ञानी पुरुष जगत को सत्यरूप मानता भी नहीं है। इस लोक में वैदिक या लौकिक कोई व्यवहार सत्य नहीं है, ज्ञान के बिना यज्ञ-यागादि और उपनिषद् के वाक्य भी निरर्थक हैं।

जहं लगि मन त्रिगुण वशीभूत तंह लगी सब कर्म है।
जहां कर्म गुण आधीन तहां बंधन भले सत्कर्म है।
बंधन से पुनि पुनि जन्म मृत्यु ये धरा को धर्म है।
संसार चक्र से चहौं मुक्ति तो साक्षी कर्म ही मर्म है।

जब तक मन त्रिगुण के वश है तब तक ही सभी कर्म हैं। जो कर्म गुणों के आधीन रहकर किए जाते हैं वे सत्कर्म होने के बावजूद भी बंधन हैं। बंधन से बार बार जन्म-मृत्यु होती हैं; यह तो पृथ्वी का नियम है। संसार चक्र से मुक्ति की इच्छा रखने वाले को साक्षी भाव से कर्म करना चाहिए, यही सच्चा रहस्य है।

बरु माया वश मन रूप गुण अभिमान से नित छलत है।

जीव से मिलि सुख दुख मोह की अभिव्यक्ति करत है।
ते बंध मोक्ष के बीज रूप ज्ञानी सदा से कहत है।
माया से निर्मित उपाधी मन हरेश्वरी यह भनत है।

परंतु मायावश मन रूप और गुण के अभिमान से रोज ठगा जाता है। वह जीव के साथ मिलकर सुख, दु:ख और मोह की अभिव्यक्ति करता है। ज्ञानीजन ऐसा कहते हैं कि मन ही बंध और मोक्ष का बीज रूप है। हरेश्वरीदेवी कहती है कि,"मन, यह मात्र माया से उपजी हुई उपाधी है।"

दश इन्द्रियां मन मिली ग्यारह विषय ग्यारह में रमै।
देहाभिमान में सदा राचे अर्थहीन यह मन भमे।
बरु जान नृप यह सर्व पर सत्ता परम आत्मा रहे।
पर मूढ ना समजे हरेश्वरी मूर्ख मन मैं मैं करे।

दस इन्द्रियां और ग्यारहवां मन मिलकर ग्यारह विषयों में रचे पचे हैं। सदा ही देहाभिमान में रहने वाला मन बिना किसी अर्थ के भमता रहता है। परंतु हे राजन! इन सबके ऊपर परम सत्ता तो आत्मा की ही है। परंतु हरेश्वरीदीवी कहती है कि "मूढ व्यक्ति इस बात को समझता नहीं है और मूर्ख मन "मैं" "मैं" से पिड़ित होता रहता है।"

है आत्मा साक्षी वृत्ति का प्रवृत्ति का सदवृत्ति का।
परमात्म रूप ते सर्वव्यापक प्राण सारी सृष्टि का।
परिपूर्ण स्वयं प्रकाश अजन्मा होई बल नहीं व्यक्ति का।
है वासुदेव स्वरूप तेहि बिना देह केवल मृत्तिका।।

आत्मा वृत्ति, प्रवृत्ति और सद्‌वृत्ति का साक्षी है। वह परमात्मा रूप, सर्वव्यापक और समग्र सृष्टि का प्राण है। वह परिपूर्ण स्वयं प्रकाशित और

अजन्मा है; उसपर किसी व्यक्ति का बल नहीं चलता। वह वासुदेव स्वरूप है, उसके बिना यह शरीर केवल मिट्टी है।

जीति षड़रिपु निरसन भया माया का तो निरासक्ति है।
जब तक न जाना आत्म तत्व तब लगि आसक्ति है।
आसक्ति से आवागमन मुक्ति की कोई न युक्ति है।
सब हृदय व्यापी आत्म तत्व ज्ञान से ही मुक्ति है।

जीव जब षड़रिपु को जीतकर माया का नाश करे तभी निरासक्ति का जन्म है। जब तक आत्म तत्व को जाना नहीं तब तक आसक्ति टिकती है। आसक्ति से आवागमन है, मुक्ति किसी युक्ति द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती। सर्वहृदय व्यापी आत्म तत्व को जानने से ही मुक्ति प्राप्त होती है।

मन महा शत्रु उपेक्षा से अतिशय दुख देत है।
मिथ्या परंतु आत्म तत्व का सत्य ढांकी लेत है।
नृप रही जागृत साधना के शस्त्र जो नर ग्रहत है।
सद्‌गुरू हरि के चरन में जीव हरेश्वरी मुक्ति लहत है।

मन मनुष्य का महाशत्रु है। उसकी उपेक्षा करने से वह अधिक दुःखी करता है। वह मिथ्या होने पर भी आत्म तत्व के सत्य को ढंक देता है। हे राजन! जागृति पूर्ण साधना के शस्त्र को यदि मनुष्य ग्रहण करे और सद्‌गुरू तथा हरि के चरण में स्थिर हो जाय तो हरेश्वरीदेवी कहती है कि वह आत्म तत्व जानकर मुक्ति को प्राप्त करता है।

राजा उवाच

दोहा

भार ग्रहण क्रिया श्रम फल, दोऊ प्रत्यक्ष तदापि।

आप कहा तत्वरूप से नहीं, क्यों ये सत्य कदापि।।

फिर राजा ने पूछा कि प्रभु! भार ग्रहण क्रिया से श्रम (थकान) रूपी फल प्राप्त होता है। ये दोनों बात प्रत्यक्ष हैं परंतु आप कहते हो कि तत्व रूप से यह कभी भी सत्य नहीं है। (कृपया इस बात को मुझे समझाओ....)

भरतजी उवाच

चौपाई

सुनु नृप देह है पृथ्वी विकारा, भारवाही अस नाम ते धारा।।

हे राजन! सुनो, देह पृथ्वी तत्व के विकार से ही उत्पन्न हुआ है। और उसने भारवाही ऐसा नाम धारण किया है।

तेहि के हाथ पैर सब अंगा, ते चलहिं पालकि के संगा।।

हाथ, पैर वगेरे सब उसके अंग हैं जो पालकी से साथ चलते हैं।

तू बैठा जो पालकी मांही, तासे भ्रम राजा का तोही।।

तू पालकी में बैठा है जिसके कारण तू राजा है ऐसा तुझे भ्रम है।

बरु मैं तू अरु पालकी सब हैं, पार्थिव तत्व आकार अलग है।

परंतु मैं, तू और पालकी सभी पार्थिव तत्व हैं; मात्र आकार अलग अलग है।

क्रिया भेद से नाम भिन्न है, मूल में माटी तो अभिन्न है।।

क्रिया भेद के कारण प्रत्येक का नाम अलग अलग है, परंतु पृथ्वी तत्व अलग नहीं है।

प्रभु माया से पृथ्वी बनी है, अगणित परमाणु से थमी है।

प्रभु की माया से पृथ्वी बनी है और असंख्य परमाणुओं से यह टिकी हुई है।

अब कहे मिथ्या है वहेवारा, की है सत्य जगत में सारा।

अब तू ही कह कि जगत के व्यवहार मिथ्या हैं कि सत्य? और जगत में कोई सार है?

केवल ज्ञान सत्य मन मेरा, बाकी सब है डंगर डेरा।।

मेरा स्पष्ट मत है कि केवल ज्ञान ही सत्य है, बाकी सब कुछ डंगर-डेरा जैसा ही है।

ज्ञान शुद्ध परमार्थ स्वरूपा, भेद रहित ते पूर्ण अनूपा।

शुद्ध ज्ञान परमार्थ स्वरूप भेद रहित पूर्ण अनुपम है।

छंद

प्रबुद्ध जन की चरण रज से स्नान जहं लगि नहीं किया।
तंह लगि भले कोटिक उपाया प्रगटे नहीं प्रज्ञा दिया।
तप यज्ञ वैदिक कर्म सेवा दान धर्म अध्ययन भया।
जल अग्नि सूर्य उपासना किसी ने भले कितनी किया।

हे राजन! तप, यज्ञ, वैदिक कर्म, सेवा, दान, धर्म, शास्त्रों का अध्ययन या जल, सूर्य, अग्नि आदि की कितनी भी उपासना करो परंतु जब तक प्रबुद्ध पुरुषों की चरण रज से स्नान न हो तब तक करोडों उपाय करने पर भी प्रज्ञा के दीपक का प्रगटीकरण नहीं होता।

आत्म प्रतिष्ठित संग में हरि गुण चर्चा होत है।
नहीं एक क्षण भी विषय वार्ता सिर्फ ज्ञान का स्त्रोत है।
नित कथा प्रेरित ज्ञान से मन राम में पिरोत है।
सत्संग से निःसंग भाव अरु तासे आनंद बहोत है।

आत्म प्रतिष्ठित पुरुषों के संग में प्रभु के गुणों की चर्चा होती है। वहाँ एक क्षण भी इन्द्रियों के विषय की बात नहीं होती और केवल ज्ञान प्रवाह

ही बहता रहता है। नित्य कथा प्रेरित ज्ञान से मन राममयी होता है। और सत्संग से नि:संग भाव का जन्म होता है और उससे आनंद में वृद्धि होती है।

संग से है काम आसक्ति क्रोधा मोह छोह विछोह है।
पुनि राग द्वेष अरु रोष शोक द्रोह और विद्रोह है।
सुनु नृप मैं था चक्रवर्ती मृगसंग से बंध गया।
केवल मृग के मोह से मैं पुनर्जन्म में मृग भया।

इन्द्रियों या संसार के संग से तो काम, आसक्ति, क्रोध, मोह, अफसोस और वियोग आदि प्राप्त होते हैं। फिर राग, द्वेष, रोष, शोक, द्रोह और विद्रोह का जन्म होता है। हे राजन! सुन, मैं चक्रवर्ती राजा था परंतु मृग के संग से कर्म के बंधन में बंध गया और मात्र मृग के मोह के कारण पुनर्जन्म में मृग हुआ।

दोहा

हे रहुगण यह अंतहीन, कर्मचक्र नहीं पार।
ज्ञान अनुभव गम्य मम, तेहि से सुख अपार।।

हे रहूगण! इस अंतहीन कर्मचक्र का पार नहीं यह ज्ञान मेरा अनुभव गम्य है और अनुभव गम्य ज्ञान से अपार सुख प्राप्त होता है।

सत्य वचन सब सुनि नृप, आत्मबोध को लीन्ह।
मन ग्रंथि छूटि सब, स्तुति बहुत विधि कीन्ह।।

योगी भरतजी के सत्य वचन सुनकर राजा रहुगण आत्मबोध को प्राप्त हुए। उनके मन की सभी ग्रंथियाँ छूट गई और उन्होंने योगी भरतजी की अनेक प्रकार स्तुति की।

रहुगण स्तुति

नमस्ते नमस्ते सदा ज्ञान गम्य
नमस्ते परम ज्ञानी आगम निगम्य
नमस्ते परमहंस अवधूत रूप
नमस्ते परमद्विज आनंद स्वरूप

नमः साक्षी रूप स्वयं तेज धामा
अकामी अनामी परम विश्रामा
नमः शिशु निर्दोष शिव रूप स्वामी
नमः गौण देहा निराभिमानी

नमो ब्रह्मचारी सदा ज्ञानकारी
हे विकारहारी सदा मोहहारी
हे अज्ञानहारी हे द्विजरूप धारी
महामस्त आनंद रूप अपारी

नमः गूढ रूप योग स्वरूप
सरूप अरूप अनूप अलक्ष
नमः भक्ति ज्ञान संसार वैद्य
हरेश्वरी वंदे अखंड अभेद्य

दोहा

रहूगण ज्ञान को पाई के, धन्य धन्य अति होई।
निज मति बरना हरेश्वरी, ज्ञान के शब्द न कोई।।

संक्षेप में इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति से संसार चक्र चलता रहता है। परंतु चक्र का काम ही है घूमना। निरंतर परिवर्तित

होते रहना। जहाँ न शाश्वतता है ना स्थिरत्व। इसी वजह से तो संसार को असार कहा है कि जहां कुछ भी स्थिर नहीं है, स्थाई नहीं है। उसे स्थिर अथवा स्थाई रखने का कोई उपाय नहीं है। उसके पास ऋषि मुनि, ज्ञानी, ध्यानी, तीर्थंकर, पयगंबर और अवतार सब हारे हुए हैं। सब आए और सब गए। इस परम सत्य का विरोध नास्तिक भी नहीं कर सकता।

दोस्तो, अब प्रश्न इतना ही बचा कि समझदार आदमी को क्या करना चाहिए?

मैं यह नहीं कहती हूँ कि संसार असार है तो उसे छोड़ दो। दोस्तो, उसे छोड़ने का कोई उपाय ही नहीं है। जहाँ आप हैं वहाँ संसार है। आप श्वास भी ले रहे हैं तो यह संसार की गतिविधि है। संसार से विरोध या शत्रुता करके आप ध्यान में नहीं उतर पाएंगे। परंतु केवल उसकी असारता को जानकर उसे समझकर आप ध्यानस्थ जरूर हो पाएंगे।

संसार तो आपके लिए एक लीला भूमि है। अस्तित्व ने इस रंगभूमि में कुछ ऐसा जादू डाला है कि उसमें कुछ भी सार नहीं होने पर भी वह सुंदर और सत्य भासित होता है।

वास्तव में ज्ञानी पुरुष को सत–असत दोनों के पार चले जाना है। सार का आग्रह छूट जाएगा फिर असार बाधा रूप नहीं बनेगा। रंगमंच का केवल आनंद लो। लीला भूमि पर अपनी भूमिका अदा करते करते भी सजग रहो कि यह सब निरर्थक है। बस, इतनी समझ से ही सार्थकता हाथ लग जाएगी।

अब यह मत पूछना कि इस ध्यान को कितने दिन तक करें? अगर बात आपको जम रही है तो इस विधि में बताए हुए सत्य का आज

से ही अनुसरण करने लगो। प्रतिपल, प्रतिश्वास, प्रतिदिन और प्रत्येक व्यक्ति के साथ व्यवहार में सजग रहो।

आप जो कर रहे हो, वह सबकुछ सारहीन है। फिर भी जिस स्थान पर खड़े हो उस स्थान पर रहकर उसे करते रहना अनिवार्य है और जो कर रह हो उसे समग्रता से करने के बावजूद भी उससे तनिक भी लिप्त नहीं होना है।

दोस्तो, ऐसा भाव जब तक निरंतर न बना रहे तब तक संसार असार है ऐसी धारणा बनाई रखनी पड़ेगी। फिर धारणा छूट जाएगी। सत्य रग रग में उतर जाएगा। पंछी पिजरे में होने पर भी मुक्त भाव में होगा। फिर पिंजरा कैद नहीं रंगभूमि लगेगा। फिर समझ में आ जाएगा कि पिंजरा भी स्वप्न है मैं भी स्वप्न हूँ, पंख भी स्वप्न है। गुलामी भी स्वप्न है और आजादी भी।

दोस्तो, संसार से भागना नहीं है। ध्यान के द्वारा उसकी असारता को समझकर परम चैतन्य की महासत्ता में स्थिर हो जाओ।



धारणा - 98

सौन्दर्य दर्शन ध्यान

ध्यान सूक्ति - 98

कोई दृश्य अति सुंदर देखि, सात्विक भाव से ध्याओ विशेषी।
तेहि क्षण शांति प्रसन्नता प्रसरे, शिव रूप समभाव अति प्रगटे।।

ध्यान विधि - 98

किसी भी सौन्दर्यपूर्ण दृश्य का विशुद्ध भाव से ध्यान करके प्रसन्नता में डूबकर शिवरूप बन जाओ ।



ज्यादातर ध्यानविधियाँ आंख मूंदकर करने को कहा गया है, क्यों? क्योंकि दृश्य मन को, मन इन्द्रियों को, इन्द्रियाँ शरीर को और शरीर फिर मन को परेशान न करे। परंतु कुछ विधियाँ ऐसे भी हैं जो खुली आंख से करनी हैं। वह साधक के लिए एक चुनौति है। यहाँ बात हार जीत की नहीं परंतु सभानता की है। चित्त को इतनी सभान अवस्था तक ले जाना है कि वहाँ आंखें और मन धोखा न खा पाएं। वह आकर्षक दृश्य आपके लिए आकर्षण का विषय नहीं परंतु ध्यान बन जाए।

प्रिय साधको!

किसी भी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य का सुंदर दिखना एक बात है तथा सुंदर होना दूसरी बात। तंत्र शास्त्र को देखकर कभी कभी लगता है कि विधियाँ विपरीत अति ऊपर चल रही हैं। बातें पूर्व – पश्चिम जा रही हैं। एक और तंत्र संसार असारता की बात कर रहा है तो दूसरी विधि में सौन्दर्य बोध की। लगता है कि नटराज हमें दिग्मुठ कर रहे हैं। परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। ये विधियाँ एक दूसरे से विपरीत नहीं परंतु स्वतंत्र हैं।

साधक की अपरिपक्व समझ के कारण विविध बिन्दुओं पर पास पास खड़ी विधियों का विपरीत दिखाई देना स्वाभाविक है। परंतु हकीकत में तंत्र का उद्देश्य अलग है। तंत्र का उद्देश्य इतना ही है कि किसी भी विधि के जरिए आप परमात्मा में प्रवेश कर लो। शिव एक अति से दूसरी अति तक की बात करके सारी अतियों का अतिक्रमण कर जाने को हमें जगाते हैं।

सुन्दर शरीर में नर कंकाल को देखकर अगर आप जाग सकते हो तो भी अच्छा है और सुंदरता को देखकर और प्रसन्न होकर उस प्रसन्नता की क्षण को पकड़कर उसमें स्थिर होकर आनंद के जरिए जाग सकते हो तो भी ठीक है। ध्यान का ध्येय है जागना और जगाना।

विधि कोई भी हो, लक्ष्य तो एक ही है। मार्ग भले कितने भी हों यहां मंजिल तो एक ही है। और वह है समाधि। प्रत्येक प्रज्ञावान पुरुष का एक ही ध्येय होता है कि आप मंजिल को प्राप्त कर लो।

तथाकथित साधु संत जहाँ डेरा तंबू डालकर पड़े है वहां ही आपका आखिरी पड़ाव बना रहे ऐसा सोचते हैं और इसके लिए आपको प्रेरित करते रहते हैं। जिसे मैं रिलीजियस टोर्चर कहती हूँ। परंतु सच्चा ज्ञान तो हमेशा कहता है कि

गति गीत है,
गति जीवन है,
गति महासंगीत है

दोस्तो, मैं कहती हूँ गति करते जाओ। मुझे छोड़ना पड़े तो छोड़ दो। मेरा साथ लेना पड़े तो ले लो। मेरा अनुसरण करके मार्गदर्शन लेना है तो ऐसा करो। मुझे भूलना है तो भूल जाओ। मेरे बाद भी बहुत से ज्ञानी मिल जाएंगे। परंतु आप परम गति के प्रति गतिशील रहो।

प्यारे साधको!

आपके मन में प्रश्न उठेगा कि इस गति का पूर्णविराम कहाँ है? ध्यान शास्त्र जवाब देता है – पूर्णविराम शिवत्व में, शून्यत्व में, प्रबुद्धत्व में, समापत्ति में, समत्व में, शांतत्व में, सच्चिदानंदत्व में कुछ भी कह लो।

प्यारे साधको!

ध्यान विधि कहती है कि कोई अतिसुंदर दृश्य देखकर उसका विशेष रूप से सात्विक भाव से ध्यान करो। उस क्षण में विशेष शांति और प्रसन्नता बढ़ेगी और आपका समभाव में प्रवेश होकर परमगति में पूर्णविराम होगा।

विधि में दो तीन बातें विशेष लक्ष्य देने जैसी हैं। वैसे तो मेरे द्वारा सरल हिन्दी चौपाईयों में दी हुई ध्यान सूक्तियाँ स्वत: अर्थ को बता देती हैं फिर भी कभी कभी ऐसा भी होता है कि साधक सत्य पर अपना अर्थ थोप देता है। तब विधि निरर्थक बन जाती है।

एक बार एक गुंडा अपने बेटे को मार रहा था। पत्नी ने कहा कि क्यों मारते हो बच्चे को? गुंडे ने कहा कि यह नालायक मुझे गुंडा बोल रहा है।

दोस्तो, सत्य को सही रूप में समझना, सुनना और उसका स्वीकार करना यह सब बहुत कठिन है। और इस कठिनता के कारण ही ज्यादातर लोग अर्थ का अनर्थ कर देते हैं।

मैंने कहीं सुना था कि प्रसिद्ध चित्रकार वान गॉग एक वैश्या के प्रेम में था। वैश्या को उसके चित्र पसंद थे, वान गॉग नहीं। परंतु वह उस स्त्री को वन–वे प्रेम करने लगा था। वान गॉग एक कुरूप चत्रकार था। एक बार वान गॉग ने उस स्त्री से पूछा कि तुझे मुझमें क्या अच्छा लगता है? कुरूप वान गॉग में चित्रकारी के सिवाय तारीफे काबिल कुछ था ही नहीं। फिर भी उस औरत ने उसका मन रखने के लिए कहा कि आपके कान अच्छे हैं। दूसरे दिन वह उस औरत को खुश करने के लिए अपने कान काटकर ले आया। और ज्यादा कुरूप हो गया।

दोस्तो, सत्य को समझने की दृष्टि बहुत कम लोगों के पास होती है। खैर! सौन्दर्य दर्शन भाव ध्यान में उतरने के लिए आपमें एस्थेटिक सेन्स होनी बहुत जरूरी है। जो सगज है उसे ही सच्चा सौन्दर्य बोध हो सकता है।

विधि कहती है कि अति सुंदर दृश्य को देखो। पहली बात तो यह समझ लो कि यहाँ लैला-मजनू वाली फिलसुफी नहीं चल सकती। वे तो अपवाद थे।

"लैला को देखना है तो मजनू की नजरों से देखो" - यह डायलॉग इधर नहीं चलेगा। अंग्रेजी की वह घिसी पिटी वह कहावत भी पकड़कर मत चलो और उसका मन घड़ंत अर्थ मत लगाओ "ब्यूटी लेज़ इन बिहोल्डर्स आईज़" आपकी आंखों ने जिसे सुंदर मान लिया हो वह सुंदर न भी हो परंतु आपके मन ने यहाँ धारणा बना ली हो वहाँ सौन्दर्य की।

ध्यान विधि कहती है कि केवल मजनू की आंखों से सुंदर लगे ऐसा नहीं चलेगा। स्वाभाविक रूप से ही कोई सुंदर दृश्य हो, जिस कोई भी असुंदर न कह सके ऐसे दृश्य को देखो तब सात्विक भाव से उसका विशेष रूप से ध्यान करने लगो।

वैसे तो मैंने "ध्यान-एक नई दिशा" (भाग -१) में बाईस विधियाँ विस्तार से दी हैं। परंतु दोस्तो विश्व तो ईश्वर का सौंदर्य मंदिर है। उसके कौने-कौने से सुंदरता छलकती है। आदमी के पास उसे देखने के लिए एक विशिष्ट दृष्टि नहीं है। अथवा समय नहीं है। मैं कहूंगी कि आदमी डर रहा है ऐसे अद्‌भुत दृश्यों से। कि वे दृश्य शायद उसे पकड़ न लें। उसे विरति में न ले जाएं। ध्यान में न उतार दें। शायद वह वहाँ रुक न जाए।

लोग भयभीत हैं। उन्हें ध्यान करना भी है और नहीं करना है। उसे शांत होना भी है परंतु उसका अस्तित्व अशांति पर आधारित है। उसे आनंद पाना है परंतु क्लेश से दूर जाने की हिम्मत नहीं है।

दोस्तो, आज के मनुष्य की सुंदरता केवल नारी के देह लालित्य पर अटक गई है। सैन्डल से लेकर साबुन तक और गहनों से लेकर गंगनचुंबी इमारतों तक के विज्ञापन में ज्यादा से ज्यादा नारी की आकर्षक अंगों के सौन्दर्य का उपयोग – दुरउपयोग हो रहा है। वह तो एक पुरुष मन को ललचाने के लिए डिज़ाईनरों की मनोवैज्ञानिक छलना है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि आज योग के विज्ञापनों में भी एक चौथाई कपड़े पहनाकर नारी शरीर के मांसल भागों का प्रदर्शन करते हुए विज्ञापनों से आकृष्ट होकर स्थूलकाय नारियाँ भी अपभ्रंश और अपभ्रष्ट योगा के लिए दौड़ी जाती हैं। वहाँ रामायण का सिद्धांत – "मोह न नारी नारी के रूपा, पन्नगारी यह नीति अनूपा" – यह गलत सिद्ध हो रहा है।

लगता है कि आज के मनुष्य को सुंदरता की खोज नहीं है। वह केवल आकर्षण और सुविधा ढूंढता है। हम मूल विषय की ओर जाएं। मुझे समाज की मनोवृत्तियों पर बात नहीं करनी है। मुझे तो उसके पार जाने की विधियाँ बतानी हैं। ताकि सभी दूषण सहज ही दूर हो सकें। अच्छे परिणाम निंदा से नहीं आते हैं, सभानता से आते हैं।

ध्यान विधि कहती है कि अति सुंदर दृश्य देखो तो तुरंत ही सात्विक भाव से उसका ध्यान करने लगो। ध्यान करने का मतलब है सभी स्थान, विचार और क्रिया से अपनी चेतना को सिमट कर उस दृश्य पर ही स्थिर करो। याद रहे! विधि में सुंदर व्यक्ति पर ध्यान करो ऐसा नहीं कहा है। केवल दृश्य शब्द का प्रयोग किया है।

मैं कहती हूँ कि भाव को समझना। आपके सामने भले अति सुंदर व्यक्ति हो परंतु आपको उसे एक दृश्य की तरह ही लेना है। उसे मन का विषय नहीं ध्यान का माध्यम बनाना है।

सौन्दर्य सबको पसंद है। परंतु ध्यान सबको पसंद नहीं होता। वही मनुष्य की कमज़ोरी है। अगर ध्यान पसंद होता तो जीवन सुंदरता से भर जाता। परंतु ध्यान मनुष्य को कठिन लगता है। इसलिए सुंदर दृश्य असफल हो जाते हैं। अथवा केवल आकर्षण का विषय बन जाता है।

दोस्तो! पूरा बोलीवुड और होलीवुड ब्यूटी पर टिका है। वहाँ दुनियाँभर का सौन्दर्य है। उसे देखने के लिए सिनेमा में ब्लेक का टिकट लेकर भी भीड़ लगती है। क्यों ? क्योंकि उन लोगों ने आदमी की कमज़ोरियों को पकड़ लिया है। सौन्दर्य में थोड़ी अश्लीलता और कहानियों का मसाला डालकर उसको और नशीला बना दिया। आदमी किसी न किसी प्रकार के नशे का शिकार तो हो ही जाता है। खैर! आखिर तो आदमी ठहरा।

दोस्तो! ध्यान का अर्थ है – हर नशे से मुक्ति। ध्यान है एक बेजोड़ सभानता। ध्यान है दिव्य गुण में स्थिर होने की विधि। जहाँ दुनियादारी गिर जाती है और दिव्यता उतरने लगती है।

प्यारे साधको!

ज्यादातर ध्यानविधियाँ आंख मूंदकर करने को कहा गया है, क्यों ? क्योंकि दृश्य मन को, मन इन्द्रियों को, इन्द्रियाँ शरीर को और शरीर फिर मन को परेशान न करे। परंतु कुछ विधियाँ ऐसे भी हैं जो खुली आंख से करनी हैं। वह साधक के लिए एक चुनौति है। यहाँ बात हार जीत की नहीं परंतु सभानता की है। चित्त को इतनी सभान अवस्था तक ले जाना है

कि वहाँ आंखें और मन धोखा न खा पाएं। वह आकर्षक दृश्य आपके लिए आकर्षण का विषय नहीं परंतु ध्यान बन जाए।

दोस्तो! एक बात याद रहे आकर्षण ललचाता है और ध्यान लालसाओं के पार ले जाता है। आकर्षण चीज को जल्दी पा लेना चाहता है। ध्यान उससे ऊपर उठ जाता है।

प्यारे साधको!

ये सब विवरण मुझे इसलिए करना पड़ा कि सामान्य मनुष्य करने बैठता है कुछ और परंतु कर बैठता है कुछ और। न उसकी ध्यान में समग्रता है न ही गलती करने में। वह तो सब बुद्धि के प्रभाव में हिसाब किताब लगाकर करता है। उसे मन की बातें भी माननी हैं, खुद को सलामत भी रखना है और दूसरों का लाभ–गैरलाभ भी उठाना है।

ध्यान और योग के नाम से आज यह सब ज्यादा आसान हो गया है। यह करुणा की बात है। इसमें मनुष्य का चातुर्य नहीं परंतु मूढता कहूंगी। जो अमृत को जहर में बदलकर पीना चाहे। उससे ज्यादा मूर्ख कौन हो सकता है? परंतु पीते वक्त लोगों को उसके नुकसान का पता नहीं चलता। लेकिन दुरोगामी परिणाम विनाशक होते हैं।

खैर! आपको क्या करना और क्या न करना? इसके लिए आप स्वतंत्र हो। मेरा कार्य है मनुष्य को जगाना। मेरा काम आपको रोक टोक करने का नहीं। स्वर्ग का लालच नर्क का भय दिखाने का भी नहीं। मैं केवल एक पथदर्शक हूँ सही मार्ग पर जाने का निश्चय तो आपको ही करना पड़ेगा। जिसमें आपकी सभानता आपकी मदद कर सकती है।

दोस्तो, अब विधि को ध्यान से समझिए। किसी अति सुंदर दृश्य को देखो तब उसे ईश्वर की प्रतिछबि समज लो। जैसे भगवान का दर्शन

करते हो ऐसी ही तल्लीनता से दृश्य का दर्शन करो। विधि कहती है कि सात्विक भाव से उस दृश्य में प्रवेश करो।

प्रिय साधको!

सात्विकता का अर्थ समझ लो। मान लो कि एक फूल है। सुंदर, तरोताजा, सुवासित, प्रफुल्लित। अगर वह राजसी व्यक्ति के हाथ लगेगा तो सोचेगा कि चलो इसे में अपनी शेरवानी में सजा लूं। तामसी व्यक्ति के हाथ में आएगा तो खामखां उसकी पंखुड़ियों को तोड़ता रहेगा और सात्विक व्यक्ति के हाथ में आएगा तो वह भगवान को चढ़ाने का अथवा किसी संत के चरण में अर्पण करने का विचार करेगा।

यह हुई भाव की बात। सत्व, राजस और तमस – वास्तव में ये मन के प्रकार हैं; मनुष्य की प्रकृति के प्रकार हैं। प्रत्येक भाव मनुष्य के मन में से उठते हैं।

विधि कहती है कि सात्विक भाव से ध्यान करना। सुंदर दृश्य पर आपके राजसी अथवा तामसी भावों को थोपकर कुरूप मत कर देना। हकीकत में तो नहीं परंतु मनोभावों से भी सौन्दर्य को खंडित मत कर देना। वहाँ से आपके मन को विचारों को पूरी तरह से हटा लेना। कुछ भी प्लस माइनस मत करना। सिर्फ दृष्टा बन जाना। गहन दृष्टि से दर्शन करते रहना। उस हद तक गहरे दृष्टा बनो कि आपकी आंख भी अदृश्य हो जाए। केवल चित्त पटल पर वह सुंदर दृश्य छा जाए।

सुंदर दृश्य के प्रति आपकी समग्र चेतना घनीभूत कर दो। जिस क्षण में आपका मन, मति, अहंकार, शरीर, और इन्द्रियाँ सब कुछ खो जाएगा और केवल सौन्दर्य का अस्तित्व बना रहेगा तब फलस्वरूप आपके रोम रोम मे शांति और प्रसन्नता प्रसरने लगेगी। सारी बेचैनी

अदृश्य हो जाएगी। उस शांति और आनंद से वापस लौटने की कोई जल्दी न करो। उसे प्रगाढ बनाने का प्रयास भी न करो। वह स्वयं प्रगाढ बनता जाएगा। आपकी सुंदर दृश्य के दर्शन की तल्लीनता से वह अपने आप प्रगाढ़त्व प्राप्त करेगी तब प्रसन्नता और शांति भी प्रगाढ़ बन जाएगी। उस शांति की क्षणों में पूरा विश्व शांतिमय, आनन्दमय, प्रसन्न और अद्‌भुत दिखने लगेगा। यह अवस्था ही भगवदता की है।

आप आज से ही प्रारंभ करो। अपने सौन्दर्य बोध को विकसित करो। अपनी मनोवृत्तयों को समझो, जानो और उसके पार जाने की कोशिष करो। सौन्दर्य को सौन्दर्य रहने दो। उसे नर नारी और रंग–रूप का नाम देने की जरूरत नहीं है। उसका अखंड रूप में दर्शन करो। ईश्वर को सत्यरूप, शिवरूप और सौन्दर्यरूप इसलिए ही कहा है कि वह आपको परम समभाव में ले जा सकता है। सौन्दर्य को ईश्वर रूप मानकर ध्यानस्थ होने की क्षमता को विकसित करो। कम से कम तीन वर्ष तक फिर आप आप नहीं रहेंगे आपमें एक विशेष व्यक्ति का जन्म हो जाएगा।





धारणा - 99

वचन ब्रह्म ध्यान

ध्यान सूक्ति - 99

ब्रह्मज्ञानी के वचन में श्रद्धा धरो हृदय से नहीं अश्रद्धा।
वचन ब्रह्म रूप सन्मानी ब्रह्मरूप बने साधक ध्यानी।।

ध्यान विधि - 99

किसी भी प्रबुद्धात्मा के वचन को ब्रह्मवचन मानकर अपार श्रद्धा के साथ उसका अनुसरण करके कल्याण को साध लो।



मन का स्वभाव है मान लेना और चैतन्य का स्वभाव है सत्य को जान लेना। जाने लेने का अर्थ यहाँ बौद्धिक स्तर की जानकारी नहीं समझना। जान लेने का अर्थ है - अंतर से जान लेना। अर्थात अनुभव कर लेना। आपको ध्यान विधियों की अनुभूति करनी है। वह अनुभूति ही सच्ची ध्यानावस्था है। जब तक अनुभूति नहीं हुई तब तक तो आप केवल अभ्यास में से अथवा धारणा से गुजर रहे हैं ऐसा समजना।

प्रिय साधको!

ध्यान और प्रेम नाम के ग्रंथ में सद्गुरू ध्यान पर सत्संग हो चुका है। यहाँ फिर से एक बार श्रद्धा पर आधारित विधि आ रही है। मैं कई बार कहती हूँ कि ध्यान मार्ग में काफी विधियाँ एकसी लगती हैं। एक दूसरे से बहुत निकट फिर भी आप उसे एक नहीं कह सकते। ध्यान में कुछ भी मान लेने की बात नहीं है; अनुभव करने की बात है।

किसी अनुभवी ध्यान गुरू के मार्गदर्शन में रहे बिना कुछ लोग अपने आप तय कर लेते हैं कि ऐसा ही होगा। यह गलत है। कुछ भी मान लेने का काम मत करना। ध्यान में मन को तो अक्रिया में ले जान है और फिर मन को अ–मन करना है।

मन का स्वभाव है मान लेना और चैतन्य का स्वभाव है सत्य को जान लेना। जाने लेने का अर्थ यहाँ बौद्धिक स्तर की जानकारी नहीं समझना। जान लेने का अर्थ है – अंतर से जान लेना। अर्थात अनुभव कर लेना। आपको ध्यान विधियों की अनुभूति करनी है। वह अनुभूति ही

सच्ची ध्यानावस्था है। जब तक अनुभूति नहीं हुई तब तक तो आप केवल अभ्यास में से अथवा धारणा से गुजर रहे हैं ऐसा समजना।

अनुभूति के अभाव को असफलता मत समझना उसे प्रतीक्षा की भूमिका समझना। यहाँ ही साधक की कसौटी है। आपको अगर विधि में रस आ रहा है तो यही प्रमाण है कि आप सही मार्ग पर हैं। मार्ग सही है तो मंजिल भी जरूर सही होगी और आपके निकट भी आ रही होगी। क्योंकि आप गति में हैं।

हाँ विधि में रस नहीं आ रहा है, विधि आपके स्वभाव को अनुकूल नहीं आ रही है तो मैं कहती हूँ कि निरसता के साथ ध्यान विधि तो क्या परंतु जिंदगी में कुछ भी मत करना। निरसता मनुष्य के उत्साह को, तेज को और जीवन को खत्म कर देती है। और याद रहे समय उत्साह और आनंद ही जीवन है। निरस कार्यों में अपना समय और आनंद मत गंवाना।

खैर! यहाँ सद्गुरू या प्रज्ञावान पुरुष के वचनों में अपार आस्था को ध्यान बनाना है। आप कहेंगे कि आस्था तो आस्था है। आस्था को ध्यान कैसे बनाएं? मैं समझा रही हूँ, आप ध्यान दीजिए। मानव मन बड़ा अस्थिर है। मन कुछ जरूरत से ज्यादा सरल है। ऐसे सरल लोगों को ज्यादा चालाक लोग मूर्ख कहते हैं। सरल मन कभी भी किसी भी का विश्वास कर लेता है। परंतु याद रहे कि विश्वास में और आस्था अथवा श्रद्धा में बहुत फर्क है।

विश्वास झूठा हो सकता है। श्रद्धा कभी झूठी नहीं हो सकती। कोई आपका विश्वासघात कर सकता है। परंतु आज तक कभी आपने श्रद्धाघात शब्द सुना है? कुछ लोग कहते हैं कि अमुक अमुक कारण से मेरी श्रद्धा

टूट गई परंतु मैं कहती हूँ कि श्रद्धा कभी टुटती नहीं और जो टूटे वह श्रद्धा नहीं।

श्रद्धा तो आपके अंतर चेतन में जन्म लेती है। विश्वास मन अथवा मस्तिष्क करता है। श्रद्धा आत्मा से जन्म लेती है। विश्वास तो हम पार्सल, कुरियर, एटीएम सेन्टर, ई–बेंकिग, ई–शोपिंग सब पर कर सकते हैं क्योंकि यह सब मनोव्यापार का विषय है, यह सब संसार है। परंतु श्रद्धा संसार के पार की एक अवस्था है।

दोस्तो! मन तो दस रुपए की लाटरी की टिकट पर विश्वास करके अरबोपति बनने का स्वप्न देखता है परंतु श्रद्धा स्वप्न या किसी असार के बल पर नहीं खड़ी होती है। वह तो स्वयं पर खड़ी होती है। श्रद्धा अपने ही बल से दिव्य परिणामों को अपने पक्ष में कर सकती है। श्रद्धा का बल तो नूतन जीवन की नींव है।

प्यारे साधको!

अब विषय की ओर आईए। यहाँ एक नई विधि है। मेरे लिए एक अनुभव सिद्ध विधि है। यह विधि कहती है कि ब्रह्मज्ञानी पुरुष के वचन में श्रद्धा रखकर उसके वचन को ही ब्रह्म समझकर उसपर ध्यान करो। स्मरण करो उन वचनो का, अपनी विचारशक्ति को उन वचनों के प्रति स्थिर रखो। गुरू या संत में अ–श्रद्धा वाले विश्व का सारा सुख भले प्राप्त कर ले परंतु परमआध्यात्मिक संपत्ति को प्राप्त नहीं कर सकते।

दुनियाँ के बहुत लोगों के जीवन में तथाकथित संत, सद्‌गुरू या गादीगुरू होंगे परंतु वचन सिद्ध ज्ञानी आत्मा आपके नजदीक होने को मैं सबसे बड़ी दिव्य संपत्ति कहती हूँ। और ऐसे ज्ञानीपुरुषों के वचनों में श्रद्धा रखने वाले को मैं सच्चे अथवा सफल शिष्य अथवा साधक कहूंगी।

दोस्तो, अगर आपकी खोज से या बड़भाग से या किसी दिव्य कृपा से आपको ऐसे प्रबुद्ध संत मिल जाए कि जिससे कुछ मार्मिक वचन प्राप्त हो जाए तो उन वचनो को ही ध्यान बना दें। फिर संत को चिटकने की जरूरत नहीं है। सच्चा संत आपको चिटकने देगा भी नहीं और खुद चिटकेगा भी नहीं।

एक सीधा नियम है कि बंधा हुआ बंधन देता है और मुक्त मुक्ति देता है। प्रज्ञावान गुरू या संत आपको मुक्त करना चाहते हैं। केवल उनसे नहीं पूरे संसार से। संसार का अर्थ है आपमें पड़े हुए विविध जाल और मन की वासनाएं। वे अपने वचनों से सारे जालों को काट देते हैं, पिंजरा खोल देते हैं। परंतु यह मुक्ति आपके सहयोग के बिना संभव नहीं। आप सहयोग करने के लिए तैयार नहीं है तो भगवान भी कुछ नहीं कर पाएंगे। आपका आपकी मुक्ति में रस होना जरूरी है।

मैंने ऐसे लोगों के बारे में सुना है कि जन्मकैद की सजा पूरी हो जाने के बाद भी वे जेल से बाहर आना नहीं चाहते। क्यों? क्योंकि उन्हें कैद की आदत पड़ गई है। ऐसा आदमी समाज के साथ समायोजन नहीं साध पाता उसे मुक्ति हजम नहीं होती। क्योंकि बरसों से बंधन ही उसका असल जीवन बन गया है। पुरुषार्थ करने की कोई तैयारी नहीं। ऐसे लोगों को सज़ा पूरी होने के बाद जेल से रिहा तो किया जाता है परंतु बंधन को प्यार हो जाने के कारण वे फिर से कुछ ऐसे गुनाह कर लेते हैं कि उसे जेल में धकेलना पड़े। क्योंकि बंधन ही उसका स्वभाव बन गया है।

प्यारे साधको!

मन का स्वभाव है बंधन। अपने मन को जानो, समजो, देखते रहो। मुक्ति के प्रत्येक उपाय में मन पलायन करता जाएगा। और बंधने

की प्रत्येक क्रिया में मन सक्रिय रहेगा। क्यों? क्योंकि मन का जन्म ही बंधन से हुआ है। फिर मन से बंधन जन्मा, फिर बंधन से मन . . . . . . यह सिलसिला खत्म ही नहीं होता।

दोस्तो, ज्ञान का अर्थ है – बंधन को काट देना। श्रद्धा का अर्थ है – मन को सत्ताभ्रष्ट करके, अहंकार को खत्मकरके, मस्तिष्क को किसीके चरण में धर देना। अपनी बागडोर किसीके हाथ में सौंप देना। अपने क्षेमकुशल की चिंता किसी अन्य पर छोड़ देना। वह अन्य अन्य होते हुए भी अन्य न हो, सक्षम हो, ज्ञानी हो और दिव्य हो। यही है समर्पण। यही है आस्था।

दोस्तो, समर्पण का मजा यह है कि जिसे आप समर्पित होते हैं उसकी जिम्मेदारी अपनेआप बढ़ जाती है। दूसरा एक मनोवैज्ञानिक सत्य यह भी है कि समझदार मनुष्य कभी अपने से कमजोरों से समर्पित नहीं होता। अपने से ज्यादा क्षमतावान, भरोसापात्र, प्रज्ञापूर्ण, रक्षक, और शक्तिमान को ही समर्पित होता है।

परमात्मा और प्रबुद्ध पुरुष, ज्ञान अथवा सद्गुरू सामान्य मनुष्य से अनेक गुने क्षमतावान होते हैं। दोस्तो, धन, दौलत, पद, प्रतिष्ठा, रूप, गुण इन सबसे कुछ विशेष संपन्न है तो वह है एक वचनसिद्ध सद्पुरुष।

ध्यान विधि कहती है कि ऐसे वचनसिद्ध संतों के वचनों पर ध्यान करो। क्यों? क्योंकि मन का स्वभाव है बार बार विचलित होना। विषयों को बदलते रहना। और आपको विचलित करके भटकाना और भटकना। मन का अस्तित्व भटकन में ही है। जिस क्षण भटकना बंद हो गया उस क्षण समझ लो कि मन गया। जिस क्षण भटकने की इच्छा शुरु हो तो समझ लेना कि मन पुनर्जीवित हुआ।

दोस्तो! साधना पथ में साधक के जीवन में ऐसे मोड़ भी आते हैं, कभी कभी परम शांति और स्थिरत्व का अनुभव होता है तो कभी कभी फिसलने का, गिरने का, गलती करने का और भटकने का मोड़ भी आाता है। ऐसी स्थिति में आदमी आकुलित हो उठता है। वह खुद को समझ नहीं पाता कि यह सब क्या हो रहा है?

उसकी शुद्ध चेतना नहीं चाहती है ऐसा कुछ भी करना जो उनसे हो जाता है और शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि खिंची जा रही हैं चक्रवात में उड़ते पत्तों की तरह इच्छाओं की ओर। ऐसी स्थिति में कभी कभी साधक घबरा जाता है। खुद को पता होने पर भी वह खुद की मदद नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में क्या करें? ऐसी स्थिति में आपकी मदद करेगा – वचनब्रह्म भाव ध्यान।

प्रिय साधको!

इस ध्यान को करके देखना यह एक बहुत सरल विधि है। मन जबतक डांवाडोल हो रहा हो अथवा कभी गया और फिर से जिंदा हुआ, फिर मरा फिर जिंदा हुआ . . . . . ऐसा अनुभव कराके आपको भयभीत अथवा विचलित करने वाले मन के साथ आपको संघर्ष में उतरने की जरूरत नहीं है। ऐसी स्थिति में मन की चिंता छोड़ो। खुद अस्वस्थ हो रहे हो तो खुद को बचाने का प्रयास भी छोड़ो। मन और आपके बीच में गजग्राह खड़ा नहीं करना है। तब आपके मन में प्रश्न उठेगा तो फिर क्या करें? अध:पतित होते रहें!

नहीं दोस्तो! ऐसा नहीं है। परंतु मैं कहती हूँ कि आप कौन हो आपको बचाने वाले! और आप कौन हो मन से लड़ने वाले? घड़ी भर मान लो कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। मेरे लिए जो कुछ भी है वह गुरूवचन या

शास्त्रवचन ही है। वह वचन ही भगवान है। वह वचन ही सर्वशक्तिमान है। वह वचन ही मेरे परम रक्षक, पालक, पोषक और उद्धारक है।

दोस्तो, अपार श्रद्धा के साथ चिंतन करते रहो कि वे वचन ही मेरे तारण हार हैं। भवसागर पार उतरने के लिए मेरे जीवन रूपी नौका को केवल उसका ही आधार लेना है। वह एक ऐसी नौका है जिनके माझी गुरू हैं। उनके हाथों में ही पतवार है। ये वचन ऐसे ही हवा के रुख को मोड़ सकते हैं। पानी में आग लगा सकते हैं। मुर्दे में जान फूंक सकते हैं। मेरे पास ऐसा सक्षम सहारा है तो मैं फिर क्यों जूझ रहा हूँ, तूफान के सामने?

जिसे तैरना न आता हो और डूब रहा हो। और पूरी रेस्क्यू टीम उसे बचाने के लिए आ गई हो फिर भी जो बचना न चाहता हो अथवा मैं ही तैरकर बाहर निकलूंगा ऐसी जिद कर रहा हो। ऐसे आदमी को पागल कहेंगे अथवा समझ लो कि उसकी मृत्यु निकट आई है।

प्यारे साधको!

मरना तो बहुत आसान है जीवन ही मूल्यवान है। लौकिक स्तर पर देखा जाए तो खाना, पीना, ऐश करना, नाम कमाना इन सारी बातों को लोग जीवन कहते हैं परंतु वास्तव में ये सच्चा जीवन नहीं है। ये सब तो जीवन में व्यस्त रहने की क्रियाएं हैं। जीवन तो यह है कि जहाँ आप अपार शांति, अमाप सुख, अखंड आनन्द और अक्षूण संतोष का अनुभव करो। ऐसा अनुभव ध्यान से प्राप्त हो सकता है।

प्यारे सधको!

वचन ब्रह्म ध्यान एक बहुत सरल और आसान विधि है। इस ध्यान में केवल आपकी श्रद्धा अखंड होनी चाहिए, अपार होनी चाहिए।

गुरू के वचनों को ही सर्वस्व मानकर कई लोग तैर गए हैं। धार्मिक साहित्य के लगभग प्रत्येक खंड अथवा अध्यायो में यह ध्यान विधि आपको सहज प्राप्त होगी।

यूस्पेन्स्की गुरजीएफ के वचनों पर श्रद्धा करके तैर गया। ईसू के वचन पूरी क्रिश्चानिटी का आधार है। इस्लाम का आधार मोहम्मद के वचन हैं। समग्र सनातन धर्म का आधार वेद के वचन हैं। ध्यान, तंत्र और शैव मार्ग का आधार है शिव-शक्ति के वचन। राम और कृष्ण भक्ति मार्ग की नीव है, राम और कृष्ण के वचन।

प्रज्ञावान पुरुषों के वचनों में विश्वास करके अर्थात उनपर ही संपूर्ण लक्ष्य को केन्द्रित करके उसको ही सच्चा सहारा और आधार समझकर कई लोग तैर गए हैं। मैंने सुना है कि एक बार महम्मद पैयगम्बर की सेहत ठीक नहीं थी तो पत्नी ने एक दीनार (रुपया) संभाल कर रख लिया था। मुहम्मद साहब को उस रात बड़ी बेचैनी होने लगी क्योंकि वे तो अल्लाह के वचन पर ही ध्यान धरते थे। किसी भी हालात में वह ध्यान भंग नहीं होता था। अपनी श्रद्धा से उसकी चेतना पूर्ण रूप से विशुद्ध हो चुकी थी। अपने पास जो कुछ भी आता था उसे रोज जरूरत मंदों में बांट देते थे क्योंकि उसको ब्रह्म वचनो में विश्वास था। उसने दिव्य वाणी सुन ली थी। कि सबका पालनहार मैं हूँ और सबकी रक्षा करता हूँ।

परंतु एक दिन मुहम्मद साहब का दिल मचल रहा था। वे बड़े बेचैन थे। उसने अपनी पत्नी से पूछा कि तूने कुछ पैसे छिपा कर तो नहीं रखे हैं। आज मेरा दिल इतना बेचैन क्यों है? पत्नी ने कहा कि आपकी सेहत ठीक नहीं थी तो मैंने एक दिनार बचा के रख लिया था। शायद दवाई की जरूरत पड़ जाए तो काम लगे। महम्मद साहब ने कहा कि

अभी की अभी किसी को बुलाकर उसे दे दे। अगर हमने चिंता शुरू की तो खुदा में अक़ीदत कहाँ रही? उसने वचन दिया है कि सबकी हिफाज़त मैं करता हूँ। आपने आज अपने भरोसे को क्यों टूटने दिया?

दोस्तों! बस यही है ब्रह्म वचन ध्यान। ऐसी गलतफहमी में मत रहना कि आंख मूंदकर ही ध्यान हो सकता है। ध्यान की अनेक अनेक पद्धति हैं, प्रकार हैं, विधि हैं। हर विधि अनूठी है। ध्यान का अर्थ ही है लक्ष्य। लक्ष्य का अर्थ है समग्र चेतना का एक बिन्दु पर या एक बात पर केन्द्रित हो जाना। विधि में बताए हुए परम सत्य के प्रति आपका लक्ष्य स्थिर रहे वही है ध्यान।

शबरी एक साधारण वनवासिनी थी। परंतु गुरू के वचन को ब्रह्मरूप मान लिया, शब्दों को ही भगवान मान लिया। गुरू अगस्त्य ने कहा था कि तेरे घर भगवान आएंगे। वचन ब्रह्म ध्यान गुरू हो गए। भगवान कब आएंगे? कैसे होंगे? कोई प्रश्न नहीं। कैसी अनूठी आस्था? कोई सोच भी नहीं सकता कि अवध का राजकुमार करुणानिधि राम शबरी की झोंपड़ी को ढूंढते ढूंढते बिना निमंत्रण अचानक वहाँ पहुंच जाएंगे।

ध्रुव को नारद ने कहा था कि यमुना के आनन्द नाम के तट पर पहुंच जा वहाँ तुझे भगवान के दर्शन होंगे। तो कब? कैसे? किस रूप में? कोई प्रश्न नहीं। ध्रुव का वचनब्रह्म ध्यान शुरु हो गया और सिर्फ छः महीने में ही साक्षात्कार हो गया। वालिया लुटेरे को नारद ने कहा – राम नाम का जप कर। तेरा उद्धार हो जाएगा। वालिया का वचनब्रह्म ध्यान आरंभ हो गया और एक डाकू ऋषि बन गया। वचन ब्रह्म ध्यान का अर्थ ही यह है कि गुरू के वचनों को सीधा हृदय में उतारकर उसका अनुसरण करना है। कोई संशय नहीं, कोई तर्क नहीं, कोई प्रश्न नहीं।

वचन को ही भगवान मान लेना है फिर भगवान की खोज में नहीं पड़ना है। भगवान स्वयं आपके पास आ जाएंगे। तब तो वचन को ब्रह्म कह सकते हैं!

ऐसे तो हजारों दृष्टांत हैं। यहाँ तो कुछ ऐसे उदाहरण दिए, जिनसे आप परिचित हैं। परंतु अब में चाहूँगी कि आप इस ध्यान विधि से परिचित बनो। इससे गुज़रो और आपके पास विशुद्ध मति, सरल चित्त तथा प्रेम और श्रद्धापूर्ण हृदय है तो यह विधि आपके लिए ही है। ऐसा समझकर अगर सद्‌भाग्य से कोई गुरू या शास्त्र से ब्रह्म वचन मिल जाए तो उन वचनों को ध्यान का आधार बना लो। निरंतर उसका ही चिंतन करो।

अपनी प्रवृत्ति, अपना घर–परिवार कुछ भी छोड़ने की जरूरत नहीं है परंतु जीवन लीला चलते चलते ही लक्ष्य को पूर्ण रूप से उन वचनों के प्रति बनाए रखो। आपकी श्रद्धा, आस्था, प्रेम और भरोसा आपको बदल देगा।

कब? कैसे? किस जन्म में? . . . . ये सब प्रश्न मत करना। ये सारे प्रश्न बालिशतापूर्ण हैं अथवा फल के लालच से भरे हैं। आपके अधिकार में केवल ध्यान करना है। सत्य वचन को स्वयं ब्रह्म मानकर उसमें डूब जाओ। बाकी सब अस्तित्व पर छोड़ दो।



धारणा - 100

हास्य ध्यान

ध्यान सूक्ति - 100

साधक शुद्ध हास्य फलदायी, परमानंद सुख शांति दायी।
मंद मध्य अति हसो सुअवसर, तेहि प्रवेश से पाओ ब्रह्मवर।।

ध्यान विधि - 100

विशुद्ध हास्य की तीव्रता तक पहुंचकर परमानंद को प्राप्त कर लो ।



जिसके पास शांति नहीं वह मनुष्य दुनिया का कितना भी सफल मनुष्य हो परंतु मैं उसे असफल आदमी कहूंगी। जिसने हंसने की क्षमता गंवा दी हो, वह दुनियां का सबसे कंगाल मनुष्य है। हंसना एक आंतरिक प्रक्रिया है। बाहर तो प्रक्रिया का मात्र परिणाम दिखता है। जो मनुष्य विनोदी नहीं है, जिसमें विनोद वृत्ति ही नहीं है, ऐसे लोग लाख प्रयत्न करें तो भी परमानंद प्राप्त नहीं कर सकते। और दुःखी होने के लिए ऐसे लोगों को दुःख की गरज नहीं रहती।

प्रिय साधको!

आज के युग के इन्सटेन्ट युग नाम दें तो अतिश्योक्ति नहीं लगेगी। आज का मनुष्य सबकुछ इन्सटेन्ट चाहता है, तत्काल। चाय, कॉफी, फूड सबकुछ इन्सटेन्ट। मेरी दृष्टि से इन्सटेन्ट का एक अर्थ है – क्षण क्षण। आज का मनुष्य इतनी जल्दी में जी रहा है कि उसके पास समय के सिवाय सबकुछ है। और यही तनाव का कारण है।

तकनीकि विकास में आदमी मशीन को दौड़ाकर खुद शांति लेना चाहता था परंतु परिस्थिति विपरीत हो गई मशीन ने आदमी को दौड़ता कर दिया और यह भी एक अंतहीन दौड़। इस दौड़ में आदमी इतना थक गया है कि उसका हास्य खो गया है। हास्य को खो जाने का अर्थ है उदासीनता, पागलपन, निराशा, पीड़ा, दुःख।

प्यारे साधको!

उदासीनता संक्रामक है, चेपी रोगों की तरह। अंग्रेजी में जिसे कॉम्यूनिकेबल डिसीस कहते है। इसका अर्थ है – संसर्ग जनित रोग। जैसे

उदासीनता संक्रामक है वैसे ही हास्य भी संक्रामक है। तो हम ऐसा तय क्यों न करें कि हम हास्य फैलाएंगे, उदासीनता नहीं।

हास्य को मैं केवल हास्य नहीं परंतु ध्यान की कक्षा तक ले जान चाहती हूँ। आपका हास्य ध्यान बनना चाहिए। आपका हास्य निर्मल, सहजता से भरा, दूसरों के दिल को खुशी से भर देने वाला और शांतिदायक होना चाहिए।

वैसे तो भरत मुनि के नाट्य शास्त्र से लेकर आज तक हास्य की महिमा बढ़ती जा रही है। परंतु हास्य खो रहा है। ये तो ऐसा हुआ कि सत्य के बारे में किताबें छपती जाएं परंतु सत्य खो जाए। चारित्र के सिद्धांत बनते जाएं परंतु चारित्रहीनता बढ़ती जाए, नीति धर्म की बातें होती रहें परंतु अनीति और अधार्मिकता फैलती रहे। हमारे समाज और धर्मों के साथ ऐसा हुआ है।

प्यारे साधको!

हंसने का मतलब यह नहीं कि आप कभी भी समय – कुसमय देखे बिना कहीं भी दांत दिखाते रहो। ऐसा हास्य मूर्खतापूर्ण और भद्दा लगता है। कुछ लोगों की यह आदत होती है कि अकारण दांत दिखाते रहते हैं। अ-समय मजाक करते रहते हैं, ऐसे लोग मूढ हैं। यह दुनिया विविध प्रकार के मूढों से उभर रही है।

दोस्तो, मैं यहां जिस हास्य की बात करने जा रही हूँ वह एक परिशुद्ध और आपको ध्यानस्थ कर दे, आपको अ-मन कर दे; ऐसे हास्य की बात है। वैसे तो बुद्ध ने भी हास्य के कई प्रकार बताए हैं। कुछ मनीषियों ने और संतों ने भी हास्य की महिमा बताई है। मनोवैज्ञानिकों ने

भी हास्य के प्रकार की बातें की है परंतु मैं हास्य को ध्यान की अवस्था तक पहुंचाना चाहती हूँ।

दोस्तो, आदमी को आदमी की हंसी को देखकर आदमी किस किस्म का है? इसका पता चल जाता है, अगर आप सजग हैं तो। हंसना यह एक कला है और यह कला ध्यान बन सकती है। आप कहेंगे कैसे?

तो अब ध्यान दीजिए। मानव शरीर और मन एक प्रयोगशाला हैं। मैं बार बार कहती हूँ कि ध्यान का अर्थ है – अपनी ही मनोदैहिक प्रयोगशाला में स्वयं वैज्ञानिक बनकर खुदपर ही प्रयोग करके शांति के विश्व में प्रवेश करने का एक सजग प्रयास। यही सही सफलता है।

दोस्तो! जिसके पास शांति नहीं वह मनुष्य दुनिया का कितना भी सफल मनुष्य हो परंतु मैं उसे असफल आदमी कहूंगी। जिसने हंसने की क्षमता गंवा दी हो, वह दुनियां का सबसे कंगाल मनुष्य है। हंसना एक आंतरिक प्रक्रिया है। बाहर तो प्रक्रिया का मात्र परिणाम दिखता है। जो मनुष्य विनोदी नहीं है, जिसमें विनोद वृत्ति ही नहीं है, ऐसे लोग लाख प्रयत्न करें तो भी परमानंद प्राप्त नहीं कर सकते। और दु:खी होने के लिए ऐसे लोगों को दु:ख की गरज नहीं रहती।

मैं कहती हूँ कि जिसके चहरे से स्वाभाविकता से निर्मल हास्य बिखरता होता हो वह मनुष्य अकिंचन होने पर भी विश्व का सुखी मनुष्य है। विज्ञान की भाषा में कहें तो मनुष्य शरीर में प्रतिपल जोग संजोग बदलने के साथ साथ बायोकेमीकल (जीवन रसायणिक) और बायो इलेक्ट्रोमेग्नेटिक (विद्युत चुम्बकीय) परिवर्तन आते रहते हैं और ज्यादातर लोग इतने अभान हैं कि वे इन परिवर्तनों का शिकार बन जाते हैं। दूसरों को भी शिकार बनाते हैं परंतु ऐसा क्यों हो रहा है, इसका उन्हें पता नहीं

होता है। क्यो ? इसका उन्हें इसलिए पता नहीं होता क्योंकि वे लोग दूसरों की लाईफ जानने में जितने उत्सुक होते हैं इससे आधे भी अपने जीवनमें उत्सुक नहीं हैं।

आखिर ऐसा क्यों करते हैं वे लोग ? क्योंकि उन्हें जीवन के अर्थ का पता नहीं है। सही और उत्तम जीवन का कोई बोध नहीं है। वे जानना भी नहीं चाहते हैं। क्योंकि जानने से तो सजगता बढ़ेगी। वे लोग मूर्छित रहना चाहते हैं। उन्हें मूर्छा में सलामती का अनुभव होता है। मूर्छा में घटित गलतियों में स्वबचाव का स्थान है। वे लोग पंगु स्वबचाव में जीते हैं। और मानसिक रूप से नपुंसक जैसे हैं। खैर!

मनुष्य अगर अपने जीवन के लिए सजग रहना चाहे तो सबसे पहले उसे अपने मन के प्रति सजग रहना पड़ेगा। जहाँ जहाँ शारीरिक क्रिया प्रतिक्रिया ऊपर मन का प्रभाव और प्रतिबिंब पड़ता हो ऐसी प्रतिक्रिया का अभ्यास करना पड़ेगा। वह अभ्यास स्वयं से भिन्न रहकर करना पड़ेगा। अर्थात इतना सजग रहना पड़ेगा कि जो खास नाम, गुण और रूप वाला मनोदेहिक ढांचा जिसे मैं "मैं" या दुनिया "तू" कहती है; वह "मैं" नही हूँ। बस! इसी अभ्यास के आरंभ में मनुष्य थोड़ा घबरा जाता है। और यही ध्यान का प्रवेश द्वार है। परंतु साधारण आदमी द्वार तक पहुँचकर वापस लौट आता है।

सामान्य आदमी जीवन का अर्थ संसार सुख, मौज-मजा, स्पर्धा-दिखावा, दौलत-शोहरत, और आयुष्य आदि करता है। जहाँ आरंभ ही गलत हो वहाँ सही अंत कैसे हो सकता है ?

प्यारे साधको!

मैंने जो बायोकेमिकल और इलेक्ट्रोमेग्नेटिक परिवर्तन की बात बताई उन परिवर्तनों को सूक्ष्म दृष्टि से देखना यह धारणा विधि है। परंतु ऐसा करना बहुत कम लोग चाहते हैं। इन बायोकेमिकल और इलेक्ट्रोमेग्नेटिक परिवर्तनों के कारण ही मनुष्य को प्रसन्नता और पीड़ा, दुख और सुख तथा आनंद और उदासीनता की अनुभूति होती है। इस द्वंद्व में मन की भूमिका बहुत बड़ी है। मनुष्य के मन में बदलाव आते ही उसकी बायोकेमीकल सिस्टम प्रभावित होती है।

दोस्तो! अब ध्यान विधि की ओर आइए। हंसना यह एक अचानक घटित होती घटना है। इसे आप प्रिप्लान्ड नहीं बना सकते। कोई इसे प्रीप्लान्ड बनाने की कोशिश करे तो वह मूढ़ता है। जिस मनुष्य के पास सेन्स ऑफ ह्यूमर है (विनोदवृत्ति)। वह मनुष्य बहुत जल्दी अ-मन हो सकता है।

मन का स्वभाव है भूत, भविष्य में उलझते रहना, सोचते रहना, योजनाएं बनाना और इन सारी बातों में लगातार वर्तमान को चूकता जाता है। वही चूक मनुष्य के लिए लंबी यात्रा का कारण बनता है। खैर! हास्य को अतीत या भविष्य के साथ कुछ लेना देना नहीं है। वह तो वर्तमान में घटती छोटी छोटी घटनाओं से अचानक स्फुरित हो जाता है।

दोस्तो! उस क्षण में मन की कोई भूमिका नहीं रहती। उस क्षण में प्रगट होती प्रसन्नता मन के कारण नहीं परंतु अ-मन के कारण होती है। क्योंकि त्वरित घटित कोई भी हास्य घटना आपको मन के पार ले गई अर्थात भूत-भविष्य के पार ले गई, चिंता से पार ले गई। योजनाएं एवं उसके कारण घटते तनाव के पार ले गई। दिमाग और विचार के पार ले

गई। और क्षणभर में प्रसन्नता को फैला दिया अर्थात वहाँ बियोन्ड माईन्ड अथवा नो थोटलेस स्टेट का जन्म हुआ। हास्य की क्षण आपको विचारावस्था के पार ले गई।

दोस्तो, आप जानते हैं कि आदमी का दिमाग फेफड़ों ने दिन भर खीचें हुए ऑक्सीजन में से साठ प्रतिशत ऑक्सीजन खा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मन और मस्तिष्क चौबीसो घंटे ऊर्जा खाते रहते हैं। और आदमी लौहार की धौकनी की तरह हाँफता रहता है।

उस साठ प्रतिशत ऊर्जा का मन और मस्तिष्क के द्वारा सद्उपयोग हो रहा है कि दुरुपयोग उसका उसको पता नहीं चलता। यह ध्यान आपको रखना पड़ेगा मतलब आपके कोन्शियस को। मन, मस्तिष्क जब निरर्थक सक्रिय रहते हैं अथवा नकारात्मक बातों में संलग्न रहते हैं तब ऊर्जा के नुकसान के उपरांत राग–द्वेषादि की स्थिति उत्पन्न होती है। और वह बायोकैमिकल परिवर्तन को पैदा करके आपको सुख अथवा पीड़ा का अनुभव कराता है।

दूसरी ओर, एक पल का हास्य जीवन की पूरी दशा बदल देने के लिए समर्थ है। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि हास्य की क्षण में मन अ–मन हो गया। जो मन विनाशक प्रवृत्ति या विचार की योजना बनाता था वह रुक गया, क्षण चली गई, मन बदल गया तो जीवन बदल गया।

इतनी छोटी सी परंतु गंभीर मनोघटनाएं बात समझाने के लिए कितना लंबा विवरण करना पड़ता है। क्यों? घूमफिरकर एक ही जवाब है। क्योंकि आज का मनुष्य अपने सुख के लिए भी सजग नहीं है। और पूछने पर कहता है कि समय नहीं है। हकीकत में ज़रा से हंस लेने में समय की जरूरत नहीं, कला की है।

अगर आपका हास्य सहज, स्वस्थ और निर्मल है तो ऐसे हास्य से कोई नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न नहीं होता क्योंकि तब मन अदृश्य हो जाता है। अथवा अ-मनी स्थिति का सर्जन होता है। हास्य के कारण आनंद की अवस्था उत्पन्न होती है और आप मन के पार पहुंचकर परस्पर विरोधी भावों से मुक्त हो जाते हैं। हंसने का संबंध प्रसन्नता के साथ है। कृष्ण कोई पागल नहीं था कि गीता के दूसरे अध्याय में प्रसन्नता को स्थितप्रज्ञ का लक्षण बताया। प्रसन्नता ज्ञानी की पूंजी है और सर्वरोग और दुःख का इलाज। प्रसन्नता बुद्धि को स्थिरत्व प्रदान करती है।

प्यारे भक्तो!

जब हम हंसते हैं तब हमारे शरीर की नाड़ियों का कंडीशनिंग होता है। उसकी ट्रीटमेंट कुदरती रूप से हो जाती है। छोटे से हास्य से करोड़ो रक्तवाहिनियाँ चार्ज हो जाती हैं, प्रफुल्लित हो जाती हैं ; कैसा है यह करिश्मा? इसीलिए तो लोग हास्य के कार्यक्रम, कोमेडी फिल्म, जोक्स और मिमिक्री के कार्यक्रम आदि देखते हैं।

हंसने के लिए लोग लाफिंग क्लब जोइन्ट करते हैं। परंतु वह एक प्रिप्लान्ड हास्य है। मैं उसके पक्ष में नहीं हूँ। सप्रयास हंसना, आयोजन के साथ बनावटी हास्य से शुरु करके नेचुरल तक पहुंचने से जो हास्य स्वयं स्फुर्त हो और सहजता से प्रस्फुटित होकर आपके चित्त को प्रफुल्लित कर देता हो उन दोंनो में गधे और हाथी का फर्क है।

हास्य के लिए जो प्रयास करना पड़ता है, उससे सिद्ध होता है कि आप असहज हैं, स्वस्थ नहीं, आपके स्वभाव में आनंद नहीं, आनन्दित होने के लिए आपको प्रयत्न करना पड़ता है। यह भी एक प्रकार की

बीमारी है। ऐसे लोग जहाँ जाते हैं वहाँ नकारात्मकता और उदासीनता के मनोकीटाणु फैलाते हैं।

हंसना यह एक अचानक घटित होती ऐसी घटना है कि मन के पास वहाँ कुछ सोचने का मौका ही नहीं रहता। हास्य मन पर हावी हो जाता है। मन अचानक नियंत्रित हो जाता है।

ध्यानी और योगियों को चित्त वृत्तियों से मुक्त होने के लिए अनेक यत्न करने पड़ते हैं। परंतु जिस व्यक्ति ने हंसने और हंसाने की कला हस्तगत कर ली है, वह सहजता से चित्त के पार जा सकता है। हास्य के दौरान सहज ही उसकी चित्त वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं और इसी वजह से मैंने हास्य को एक ध्यान विधि की भूमिका देकर इस ग्रंथ में समाविष्ट किया है।

हास्य भले क्षणिक हो परंतु उसका शरीर पर कई क्षणों तक कभी कभी तो घंटो और दिनों तक असर रहता है और कभी कभी तो कुछ हास्य घटनाओं का जब जब पुनःस्मरण हो तब तब मनुष्य हंस लेता है और उस घटना को दूसरों को बताकर हंसा भी सकता है।

मैं कहूंगी कि अष्टांगयोग में हास्य को जोड़कर योग के आठ अंग के बदले नौ अंग के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। क्योंकि योगाभ्यास तो अनुक्रम से विकसित होकर चित्त वृत्ति को कई प्रयत्नों के बाद अनुशासन में ले सकता है परंतु हास्य क्षणांश में ही मनुष्य के मन को शांत और प्रसन्न कर देता है।

प्यारे साधको!

निर्मल हास्य तो स्वयं ईश्वर का स्वरूप है। आजतक असंख्य ज्ञानी लोगों ने अपने सत्संग में आनंद की बात छेड़ी है। शायद आपने सुना

होगा कि ज्ञानी संत आठों प्रहर आनंद में रहते हैं और आनंद में बिताने की बात करते हैं। वे सब अनुभव सिद्ध पुरुष थे; पोंगे पंडित नहीं थी। उन्होंने प्रसन्नता की महिमा जान ली थी।

आप राम, कृष्ण, ईसू, महावीर सबके चित्रों को देखना, उनके चहरे पर सदा प्रसन्नता और शांति दिखाई देती है। कोई मनुष्य तर्क कर सकता है कि वह तो चित्रकारों द्वारा बक्षी हुई सुन्दरता हो सकती है। परंतु हर किस्से में ऐसा नहीं हो सकता। देह लालित्य एक बात है और चहरे पर शांति और गहन प्रसन्नता की रेखाएं उभरती रहना दूसरी बात है। किसी प्रसन्न चहरे को देखकर या विशेष ऊर्जावान और हकारात्मक या हौरापूर्ण चहरे देखकर ही चित्रकार को ऐसी सुंदर छबियों पर चित्र खींचने का मन होता है। उदास चहरों के चित्र खींचने वाले चित्रकार बहुत कम होते हैं। या कोई विशेष बात को बताने के लिए खींचते हैं।

मैंने कुछ समय पहले सोक्रेटिस का एक चित्र देखा था। वह चित्र अद्‌भुत था। सोक्रेटिस के इर्द–गिर्द दो चार चाहक हैं, सोक्रेटिस को जहर देने की तैयारी हो रही है, उसके चाहक उदास, विवश और लाचारी की मुद्रा में हैं, अति व्याकुल हैं क्योंकि कुछ ही क्षणों के बाद सोक्रेटिस इस जहाँ में नहीं रहेगा। इस बात से वे चिंतित हैं। सोक्रेटिस जैसे प्रबुद्ध पुरुष की छत्र छाया को गंवाना और उसे द्वेष के कारण जहर देकर अकाल मृत्यु के द्वारा पृथ्वी पर से मिटा देने का षड़यंत्र एक भयानक घटना थी। परंतु सब बेसहारा हैं। लेकिन सोक्रेटिस के चहरे पर आत्मविश्वास और निर्भयता झलक रही है। प्रसन्नता भी झांक रही है।

मैं कहती हूं कि यह केवल कल्पना चित्र नहीं है। मृत्युदंड की क्षण में भी सोक्रेटिस की सहाजिकता से जितनी प्रसन्नता बनी रही थी उसे छबि में खींचने के लिए चित्रकार विवश हो गया होगा।

प्यारे दोस्तो!

मीरा और सोक्रेटिस जैसे लोग तो भयानक, नाजुक और पीड़ा की क्षणों में प्रसन्न रह सकते हैं तो आप कम से कम खुशी की क्षणों में तो खुश रहना सीखो। खैर! हम बात कर रहे हैं हास्य ध्यान की। दोस्तो, हास्य से प्रसन्नता और प्रसन्नता से ध्यान प्रवेश। इस बात को याद रखना।

मैं कहती हूँ कि जो आदमी मुक्त हास्य कर सकता है, उसे आसन या प्राणायाम क्रियाओं की जरूरत नहीं है। क्योंकि खुलकर हंसने से अनावश्यक केलरी खर्च होकर आपके वज़न को नियंत्रित करती है। दुःखी मन के लिए हास्य एनेस्थेटिक ड्रग जैसा काम करता है। थोड़ी देर के लिए पीड़ा, दुःख और चिंता का विस्मरण हो जाता है।

हास्य रसायण एक ऐसा रसायण है जो शरीर में तनाव उत्पन्न करने वाले रसायण कार्टीसोल और एपीन्प्राइन के स्तर को ठीक करते हैं। और आपकी स्वस्थता बढ़ाता है। आज के युग में स्वास्थ्य की संक्षिप्त व्याख्या करते हुए मैं इतना ही कहूंगी कि जो मनुष्य तनाव और चिंतामुक्त है वही सही अर्थ में स्वस्थ है।

दोस्तो, मुक्त हास्य से शरीर में एन्डोर्फिन नाम के हार्मोन की उत्पत्ति होती है। जो मनुष्य की रोग प्रतिकारक शक्ति बढ़ाता है। खूब हंसने से अनावश्यक केलरी खत्म होने के साथ साथ आनंद उत्पन्न होने के कारण आवश्यक सूक्ष्म ऊर्जा भी प्राप्त होती है।

मैं कहूंगी कि हास्य ध्यान तो ध्यान और सम्यक व्यायाम का संयोजन है। उसे एक सहज और प्रसन्न व्यायाम भी कह सकते हैं। जैसे मैंने बता दिया कि हास्य से पूरे शरीर की नाड़ियाँ खुलती हैं, मुक्त मन से हंसने से कंठ, फेफड़े और चहरे के सभी स्नायुओं को सहज व्यायाम मिल जाता है। रक्त परिभ्रमण विशेष रूप से गतिशील होता है। उचित गति से रक्त भ्रमण से शरीर और चहरे की मांस पेशियों पर चमक आती है। रक्तवाहिनियों का कंडीशनिंग होने से चहरा, उदर, फेफड़े, हृदय, मस्तिष्क आदि सभी महत्वपूर्ण अव्यवों को ज्यादा ऑक्सीजन मिलता है और इस प्रकार मनुष्य स्वयं को ज्यादा ऊर्जावान अनुभव करता है।

प्रिय साधको!

हास्य तो एक सूक्ष्म पोषक तत्व है आप उससे दूर नहीं रह सकते। आनंद तो आत्मा का सहज स्वभाव है। अगर आपको मेरी वैज्ञानिक बातों में रस न भी हो तो भी हंसना मत चूकना। परंतु सावधान जहाँ तक ध्यान विधि का लेना देना है वहाँ शुद्ध हास्य ही फलदायक है। शुद्ध हास्य को परमानन्द और सुख शांति का दाता कहा है। उस वचन को चूकना मत, भूलना मत। उपरांत सूक्ति में सुअवसर शब्द का भी प्रयोग है। इसपर खास ध्यान देना। मनुष्य के पास जब मन अशुद्ध होता है तब वह निर्मलता को समझ नहीं सकता।

दोस्तो, मैंने हास्य को कुछ विशेष प्रकारों में बांटा है। जो है – मूर्ख हास्य, मूढ हास्य, खल हास्य और निर्मल हास्य। मैं चाहूंगी कि ध्यान के लिए आप निर्मल हास्य को समझो और ऐसा ही हंसो।

मूर्ख हास्य हंसने वाले को ही हास्यास्पद बना देता है। मूर्ख आदमी को समझ नहीं होती कि कहाँ हंसे, कब हंसे, कितना हंसे, हंसना

चाहिए कि नहीं हंसना चाहिए? मैं कहती हूँ कि हास्य भले एक स्वयंस्फूर्त और सहज घटना है परंतु हंसते वक्त कॉन्शियसनेस की गैरमौजूदगी नहीं होनी चाहिए। मूर्ख आदमी अर्थहीन हंस देता है, उसके अर्थहीन अथवा कुसमय पर हंसते ही पता चलता है कि हंसने वाला मूर्ख है। ऐसा हास्य न प्रसन्नता फैला सकता है न ध्यान बन सकता है। ऐसे निरर्थक हास्य में समझदार आदमी चाहने पर भी नहीं जुड़ सकता। आप ऐसे हास्य से और ऐसे हंसने वालों से सावधान रहना।

दूसरा प्रकार है, मूढ हास्य। आप उसे मेड लाफिंग भी कह सकते हैं। आपने कभी देखा होगा कुछ मूढ अथवा पागल आदमी हंसते रहते हैं। वह हास्य नहीं है, वह पागलपन है। ऐसा हास्य न प्रसन्नता है न ध्यान है। न उसमें कोई अर्थसभरता है। वह मात्र पागलपन है। ऐसे पागल जिंदगीभर हंसते रहते हैं परंतु कोई फायदा नहीं। क्योंकि वह ओलरेडी पागल हो चुका है और पागलपन से हंस रहा है। वह उसकी बीमारी है, विनोदवृत्ति नहीं।

आदमी पागल कब होता है? दोस्तों! उसके मन और मस्तिष्क का तनाव जब उस हद तक पहुंच गया कि वह झेल नहीं पाया। उसका मस्तिष्क संतुलन खो चुका। अव्यवस्थित मन में अव्यवस्थाएं उस हद तक बढ़ गई कि फिर उसके पास मन को ठीक करने का कोई उपाय नहीं रहा और मानसिक स्वस्थता गंवा दी। ऐसे पागलों को चौबीसों घंटे हंसने पर भी उसके शरीर में लाभदायक होर्मोन्स नहीं बढ़ते। और बढ़ते भी होंगे तो फ़ायदा नहीं करते क्योंकि उसका हंसना हंसना नहीं परंतु पागलपन है।

तीसरे प्रकार का हास्य है, खल हास्य। यह हास्य खतरनाक है। दूसरों के लिए दर्दनाक है। दोस्तो, खल का अर्थ होता है दुष्ट। दुष्ट आदमी

का हंसना भी दुष्टतापूर्ण होता है। ऐसे लोग किसीकी पीड़ा पर किसेके दु:ख पर, किसीकी वेदना पर, किसीकी लाचारी पर, तो किसीकी मजबूरी पर हंसते हैं। ऐसे लोग ज्यादातर व्यग्य में हंसते हैं। ऐसा हंसना सामनेवाली आंखों को और दिल को तीर की तरह चुभता है।

मैं कहती हूँ कि किसीकी मजबूरी, पीड़ा, दु:ख–दर्द और गलती पर हंसना; यह एक मनोपाप है। आप किसीकी गलती को दूर न कर पाओ, माफ न कर पाओ, ढांक न पाओ तो कोई बात नहीं परंतु उसपर हंसना मत। अध्यात्म मार्ग एक पावन मार्ग है। मानसिक पापों के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं।

प्रिय साधकों!

अब ज़रा विशेष ध्यान दीजिए। जो हास्य ध्यान बन सकता है, वह है, केवल निर्मल हास्य, शुद्ध हास्य, सहज स्फुर्त हास्य। मैं कहती हूँ कि जब भी मौका मिले तब हंस लो, खूब हंस लो, भले अट्टहास्य करो परंतु निर्मल होना चाहिए। दोस्तो, स्वाभाविक हास्य और निर्मल हास्य मैं उसे कहूँगी कि जो सर्वमान्य हो। जिसमे कोई एक व्यक्ति टार्गेट न हो, जिसमें आपके हास्य से अन्य व्यक्ति संकुचित न हो जाय, किसीको अपराध भाव का बोध न हो, जिसमें सूक्ष्म या मानसिक हिंसा न हो, जिसे सब हंस सकें और आपके हंसने से किसीको भी ऐसा अनुभव न हो कि उससे कोई गुनाह हो गया। तो ऐसे मौके पर मैं कहती हूँ कि दिल खोलकर हंसो, मनभर के हंसो, चिल्ला चिल्लाकर हंसो, खूब हंसो, सबको हंसाओ, पेटपकड़कर हंसो, ठहाका मारकर हंसो।

मैं कहती हूँ कि इतना हंसो कि आपका हास्य इतना संक्रामक बन जाए कि इर्दगिर्द के लोग भी हंसने के लिए मजबूर हो जाएं। ऐसा हंसो कि

आपकी हंसी देखकर आदमी एक बार तो हंस दे। कम से कम मुस्कुरा तो दे ही। कारण जानने का उसे मौका भी न मिले और हंस दे, इतना सुंदर हंसो। इतनी समग्रता से हंसो को दूसरों को कारण जानने की इच्छा ही न जगे और आपके साथ हंसने में संलग्न हो जाए। लेकिन एक बात का ध्यान रखना कि बनावटी हास्य मत बिखेरना। केवल शुद्ध हास्य ही फलदायक हो सकता है। मैं आज के लाफिंग क्लबों के पक्ष में इसलिए नहीं हूँ कि वहाँ कुछ लोगों का हास्य तो लगभग स्थूल होता है।

मैंने टी.वी. पर कभी देखा है कि कुछ साधु-बाबा भी उसके प्रोग्राम के अंत में कहते हैं कि चलो अब सब हंसो और तीन बार हा.. हा... हा... ठहाके मारते हैं। भेड़ीया धसान की तरह। दोस्तो जैसे एक बकरी या भेड़ बैं. . . बैं. . . करते हैं तो सब बैं. . . बैं . . . करने लगते हैं, ऐसा हास्य हास्यास्पद है। यह हास्य नहीं है यह तो हास्य की एक औपचारिकता है। और दूसरी ही क्षण हंसने और हंसाने वाले बाबा की सहजता खो जाती है और चहरे गंभीर बन जाते हैं। ऐसा कैसा हास्य? कि जिसका असर आपके चहरे पर कुछ क्षण के लिए भी न टिक पाए। दोस्तो! आपका हास्य स्वयं स्फूर्त और स्वाभाविक होना चाहिए। ये आदेश से वास्तविक नहीं बन सकता। यह कोई मिलेट्री की तालीम नहीं है कि चलो अब कदम ताल और एक.. दो.. एक.. दो.. हो गया शुरु।

मैं तो कहती हूँ कि कुछ लतीफे कुछ घटनाएं, कुछ ऐसी बाते जिसे याद करके आपको अकेले में भी हंसी आ जाए, ऐसी बातों को स्मृति में रख लो। मैं उसे हास्य की सम्यक स्मृति कहूँगी। अकेले में भी ऐसी दिल बहलाने की बातें याद आएं तो मस्कुरा लो। दोस्तों के पूछने पर घटना को

शेयर करो। सबको हंसने का मौका दो। भगवान ने हास्य जैसी मूल्यवान चीज आपको मुफ्त में दी है। तो आप भी उसे उदारचित्त होकर बांटो।

जब भी निर्मल और निर्दोष हास्य का क्षण जन्म तो उस क्षण को मैं सुअवसर कहती हूँ एक उत्सव का मौका कहती हूँ। ऐसा मौका मिले तब घटना के अनुसार मंद, मध्यम या अति हास्य तक पहुंच जाओ। आपको इन तीनों अवस्थाओं से गुजरते गुजरते पता चल जाएगा कि मन खो गया है और इतना खो गया है कि आप मन को ओढ़ना चाहो तो भी थोड़ी देर के लिए मुश्किल हो जाए। केवल आनंद बरस रहा है। तो उस आनंद में खो जाओ। अभी मन को नया विषय देने की चेष्टा भी मत करो। इतनी जिम्मेदारी आपकी। हास्य के पल भले खत्म हो जाएं परंतु उसके बाद की भीतर चल रही आनंद की अवस्था में प्रवेश करो, उस मस्ती में प्रवेश करो, उस प्रसन्नता में प्रवेश करके मौन हो जाओ। घटना बार बार याद आए तो मुस्कुराते रहो। हर तरफ से अपना ध्यान हटा लो। अपने इर्द गिर्द क्या हो रहा है? उसे मत देखो; सीधे भीतर उतर जाओ। साक्षात् प्रसन्नता बन जाओ। हास्य की क्षण अद्‌भुत होती हैं। उन परम क्षणों में प्रवेश कर लो। वह क्षण ब्रह्मानंद के समान हैं। तब ब्रह्मवर बरसेगा। आशीर्वाद बरसने लगेंगे। आप अनुभव करेंगे कि आप विश्व की सबसे सुखी आत्मा हो। इससे ज्यादा और क्या चाहिए?

दोस्तों! तो चलो आज से आरंभ करो। हंसने का संकल्प करो। निर्मल हास्य का एक भी मौका मत चूको। हास्य रस के माहौल का आधार लो। ऐसे साहित्य का आधार लो। आपकी सुषुप्त विनोद वृत्ति को जगाओ, उसे सतेज करो। निर्मल हास्य रस प्राप्त हो ऐसे कार्यक्रम, कलाकार और कैसेट को सुनो। रोज ब रोज हास्य को घटित करती

घटनाओं में बारीकी से प्रवेश करना सीखो। इसे दो तीन महीने का अभ्यास मत बनाना। इसे करते रहो, हर पल ढूंढते रहो हंसने का मौका। फिर तो आनंद आपका स्वभाव बन जाएगा।

दोस्तो, बहुत रो लिया। आप पैदा हुए तब से दुनियाँ उत्सुक थी आपको रुलाने में। क्योंकि आपका रोना उसकी हंसी थी। मैं कहती हूँ कि अब आप इतने सजग हो लो कि दूसरे का रोना आपकी हंसी न बने और आपकी हंसी कोई छीन न सके। दोस्तो, जब आप जीवनभर निर्मल हास्य बिखेरने की कला सीख लेंगे तब आपका हास्य ध्यान सफल हो जाएगा।



धारणा - 101

अश्रु ध्यान

ध्यान सूक्ति - 101

अष्ट प्रकार अश्रु मैं गाया, ध्यानाश्रु सर्वोच्च कहाया।
मनो विरेचन मूल है अश्रु, कृतसंकल्प ब्रह्म बनी प्रसरू।।

ध्यान विधि - 101

ध्यान में डूबकर जब अश्रुपात होने लगे तब उस क्षण में घटित मनोशुद्धि द्वारा ब्रह्मस्वरूप बन जाओ ।



जिस तरह मनुष्य के पेट में कचरा इकट्ठा हो जाए तो उसे किसी भी रेचक पदार्थ से खाली करना पड़ता है वैसे ही मनुष्य के मन में भरा हुआ कचरा दुःख, पीड़ा, तनाव अथवा कुछ विशेष प्रकार के भावों को खाली करने का उपाय है मनोविरेचन। जिसे प्लेटो केथारसिस का सिद्धांत कहते हैं। यह मनोविरेचन अनेक प्रकार से होता है। क्रोध करके, बकवास करके, गाली बकके, उछलकूद करके, चिल्ला करके, रो करके . . . । भारत के फोरेन मेटालिटी वाले आचार्य रजनीश ने डायनेमिक मेडीटेशन के भाग रूप केथार्सिस को ले लिया है। परंतु मेरा अनुभव है कि आप जो अश्रु का भी उत्सव मनाना चाहो तो आपका रोना अश्रु ध्यान बन सकता है।

प्रिय साधको!

अश्रु ध्यान विधि आरंभ करने के पहले मेरा एक शेर याद आ रहा है –

ये आंसु हैं नहीं यह तो हैं तेरे प्यार की नरमी
ये नरमी में जो गरमी है वही तो जिंदा रखती है

दोस्तो! आंसु कई प्रकार के होते हैं। मैं हास्य के पक्ष में हूँ और इसलिए अश्रु की बात करनी भी अनिवार्य हो गई है। क्योंकि अश्रु हास्य का दूसरा पहलू है। ट्रेजेडी और कोमेडी जीवन रूपी सिक्के दो पहलू हैं। आदमी भले कितना भी हंस ले परंतु जो रो नहीं सकता, वह तो अधूरा है। हास्य की तरह रूदन भी जीवन की एक अनिवार्य घटना है। क्यों? क्योंकि रूदन से मनोविरेचन की प्रक्रिया हो जाती है।

दोस्तो, ये मनोविरेचन क्या है? जिस तरह मनुष्य के पेट में कचरा इकट्ठा हो जाए तो उसे किसी भी रेचक पदार्थ से खाली करना पड़ता है वैसे ही मनुष्य के मन में भरा हुआ कचरा दुःख, पीड़ा, तनाव अथवा कुछ विशेष प्रकार के भावों को खाली करने का उपाय है मनोविरेचन।

जिसे प्लेटो केथारसिस का सिद्धांत कहते हैं। यह मनोविरेचन अनेक प्रकार से होता है। क्रोध करके, बकवास करके, गाली बकके, उछलकूद करके, चिल्ला करके, रो करके . . . । भारत के फोरेन मेटालिटी वाले आचार्य रजनीश ने डायनेमिक मेडीटेशन के भाग रूप केथार्सिस को ले लिया है। परंतु मेरा अनुभव है कि आप जो अश्रु का भी उत्सव मनाना चाहो तो आपका रोना अश्रु ध्यान बन सकता है।

प्यारे साधको!

एक बात का खास ध्यान रहे। यहाँ अश्रु का संबंध उदासीनता के साथ मत जोड़ो। आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि तो क्या कोई खुशी से थोड़े ही रोता है? हाँ, रोना दु:ख का भी होता है और खुशी का भी। आंसू हजारों प्रकार के होते हैं। जरूरी नहीं कि हर बार वह दु:ख के ही हों या हर्ष के। इसलिए तो मैंने आंसू को आठ प्रकारों में बांटा है।

१. हर्षाश्रु
२. पीड़ाश्रु
३. बालाश्रु
४. लीलाश्रु
५. प्रेमाश्रु
६. प्रायश्चिताश्रु
७. करुणाश्रु
८. ध्यानाश्रु

प्यारे साधको!

साधारण मनुष्य का मन जल्दी ही हर्ष या शोक से भर जाता है। वास्तव में यह साक्षी भाव और सहिष्णुता का अभाव है। मन की विचलितता

है। और दूसरे अर्थ में अभान संवेदनशीलता। एक बात तो स्पष्ट है कि संवेदनशील मनुष्य ही रो सकता है। जिसके दिल का संवेदना का झरना सूख गया है, ऐसे मनुष्य की आंख में जल्दी आंसू नहीं आ सकते। ऐसे लोग अक्सर स्वार्थी और अहंकारी होते हैं। ऐसे लोग शायद तभी रोते हैं जब उसका स्वार्थ पूरा न हो अथवा उसके अहंकार को चोट पहुंची हो। उसमें भी पहले तो उनके प्रयत्न यही रहते हैं कि वे दूसरे को रुलाएं परंतु वे जब चारों ओर से निराश हो जाते हैं तब वे टूटने के बाद रोते हैं। ऐसे आंसुओं का कोई मूल्य नहीं। ऐसे आसुं अक्सर मगर के आंसु होते हैं। वह मतलबपरस्ती है। ऐसे आंसु न ध्यान, न शांति बन सकते हैं। वह केवल अंधे स्वार्थ में डूबे हुए लोगों का मनोविरेचन है। परंतु ऐसे लोग मन को खाली करने के बाद भी ध्यान में नहीं उतर सकते। फिर फिर के मन में कचरा भर लेते हैं। ऐसे स्वार्थी लोग हर्ष की घटनाओं को भी अहंकारपूर्ण शब्द और बॉडीलेंग्वेज से व्यक्त करते हैं।

सरल चित्त मनुष्य की आंखों खुशी की क्षणों में हर्षाश्रु छलक उठते हैं। फिर भी याद रहे, ऐसे अश्रुओं से चित्त थोड़ा हल्का होकर क्षणिक शांति का अनुभव करता है परंतु उस शांति में ज्यादा समय तक प्रवेश करने की क्षमता न हो तो ऐसे अश्रु से कोई आध्यात्मिक फायदा नहीं ले सकते हैं।

दूसरा प्रकार है पीड़ाश्रु। पीड़ा और शोक भी हर्ष का दूसरा पहलू है। जब किसी मनुष्य के लिए मनोपीड़ा या शरीर पीड़ा असंह्य बन जाती है तब वह आंसु बनकर फूट पड़ते हैं। रोने से मन थोड़ा हल्का हो जाता है परंतु वह भी विरेचन की कोटि का ही है। केवल कैथारसिस कभी ध्यान नहीं बन सकता। केवल कैथारसिस करने वाले लोग खुद खाली होकर

बाहर उदासी फैलाते हैं। कभी कभी एक पीड़ित दूसरे पीड़ित को खुद रोकर रुलाते हैं।

दोस्तो!

हास्य की तरह अश्रु भी संक्रामक हैं। एक से ज्यादा प्रसन्न लोग इकट्ठे होते हैं तो खुशी फैलती है और एक से ज्यादा पीड़ित लोग उदासी फैलाते हैं। औरतों में यह घटना विशेष रूप से देखने को मिलती है। किसी की मृत्यु होने पर यह दृश्य खास दिखाई देता है। परंतु इन अश्रुओं में प्राप्त होती शांति की क्षण में प्रवेश कर लेने की क्षमता नहीं होती तो ऐसे रूदन से केवल उदासीनता और अश्रु फैलते हैं। परंतु कोई खास आध्यात्मिक फायदा नहीं होता।

अब बात करें बालाश्रु की। अनेक प्रकार की लीलाओं में विद्वानों ने बाल लीला को भी समाविष्ट किया है। बच्चे के पास बहुत छोटा मन होता है। छोटे बच्चे का अहंकार भी ज्यादा विकसित हुआ नहीं होता। जिससे वे निर्दोष होते हैं। तब प्रश्न उठता है कि वह लीला क्यों करेगा? बात जरा समझने जैसी है। बाल लीला में और बड़ों की लीला में मूल फर्क यही होता है कि बच्चा केवल खेल करता है और बड़े लोग चालाकियों से खेलते हैं। दोनों खेल ही हैं परंतु खेल खेल में फर्क है। एक में इनोसंसी है और दूसरे में ईरादे हैं। बच्चे के अश्रु भी कभी कभी लीला होती है। एक क्षण में वे रोते हैं और दूसरे क्षण में वे हंसने लगते हैं। इसमें कोई आयोजन नहीं है। वह सहज और स्वाभाविक होता है। मनोवैज्ञानिक कुछ कारण देते हैं और उसे बालमनोविज्ञान कहते हैं। बाल मनोविज्ञान बहुत रसप्रद विषय है। बाल मानोविज्ञान की पुस्तक पढ़कर इतना मजा नहीं आता कि जितना बाल लीला के साक्षात्कार से। बच्चे का मन पढ़ने के

लिए और उसके निकट जाने के लिए बच्चा बन जान पड़ता है। आपके पास बच्चे जैसा दिल चाहिए। तभी आप उसे समझ पाएंगे। आपने देखा होगा कि माँ बच्चे को सबसे ज्यादा समझ सकती है। वह किसी भी यूनिवर्सिटी में पढ़ने नहीं गई है। न कोई मनोविज्ञान पढ़ा है। तो भी बच्चे के अश्रु को समझ सकती है। क्योंकि बालमनोविज्ञान प्रत्याक्षानुभव का विषय है। बच्चे के मन का अभ्यास करने के बाद चाइल्ड साइकोलोजी की पुस्तकें बनी हैं, पुस्तकों से बच्चे का मन नहीं।

बालाश्रु के मुख्य दो कारण हैं। एक प्रमाणिक कारण है और दूसरा मनोवैज्ञानिक। बच्चों के पास बड़ो जैसी भाषा नहीं होती। और वे जब तक बड़ों जैसी भाषा न सीखें तब तक ही बच्चा रहता है। भाषा का अर्थ यहाँ मैं बहुत विस्तृत अर्थ में लेती हूँ। उसे केवल शब्दों के संदर्भ में मत समझिए। छोटे बच्चों के पास अपनी मांगे पूरी करने के लिए और अपनी पीड़ाओं को व्यक्त करने के लिए एक ही भाषा है और वह है रूदन। बच्चा रोता है तो इर्द गिर्द में जो कोई भी है उसे पता चलता है कि बच्चे को कोई तकलीफ है। रोने की बोली में बच्चा अपनी मांगें आपके सामने रखता है। माँ सबसे ज्यादा बच्चे के सम्पर्क में होती है। बच्चे के प्रति संवेदनाएं माँ के साथ सूक्ष्म संवाद कर लेती हैं। और ज्यादा से ज्यादा बच्चे के सानिध्य में रहने का कारण और अपने ही अंग से बच्चा जन्मा हुआ है इस कारण उन दोनों के बीच में एक तार जुड़ा हुआ होता है। और विशेष संपर्क और सानिध्य के कारण वह बच्चे की संपूर्ण बॉडीलेंग्वेज से और रोने के प्रकार से समझ लेती है कि उसे क्या चाहिए? बच्चा क्यों रो रहा है? अथवा दादी, नानी जैसी अनुभवी नारियाँ भी इस बात को समझ सकती हैं। खैर!

मुझे जाना है ध्यान विधि की ओर। यहाँ मुख्य बात बाल मनोविज्ञान की नहीं है परंतु अश्रु की बात चल रही है तो उसके विषय में भी भले थोड़ी चर्चा हो जाए। दोस्तो, ध्यान समाज के बाहर क चीज नहीं है। ध्यान समाज की आत्मा है। समाज का अर्थ है जिन लोगों में समझदारी है। और ध्यान दुनियाँ के समझदार लोगों के लिए है। और समझदार लोग नामसमझों को जगा लेंगे और ऐसे धीरे धीरे एक नूतन समाज का निर्माण होगा। वह कार्य मेरे जरिए हो रहा है।

हम बच्चे की बात कर रहे हैं तो बालाश्रु की बात पहले पूरी कर लें। जब बच्चों को सहजता से समझने वाला कोई नहीं होता है तब उसके हाथ एक कूंजी लग जाती है। और वह है रोने की कूंजी। उसके भीतर एक बात घर कर जाती है कि बिना रोए मुझे कुछ भी मिलने वाला नहीं है। या मुझे कोई गोदी में उठाने वाला नहीं है। बच्चा जैसे जैसे बड़ा हो जाता है वैसे वैसे उसे भी लोगों की भीड़ की, परिवार की भावनाओं की आदत पड़ जाती है। और जब उसके प्रति कोई खास ध्यान नहीं देता है तो वह रो रो कर सबका ध्यान अपनी ओर खींचने का प्रयास करता है। बच्चे के रोने से ईर्द–गिर्द के लोगों को विक्षेप होता है, ज्यादातर लोग उसके विक्षेप से बचने के लिए उस पलने से उठाकर अपने बीच में रख लेते हैं। बच्चे जब केवल औरों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए रोते हैं अथवा उसकी छोटी मोटी गलतियों के लिए कि उसे कोई डांटे नहीं इसलिए वह पहले से ही रोना शुरु कर देता है या अपनी ज़िद पूरी करने के लिए रोता है तो यह है बालाश्रु। परंतु यह भी ध्यान नहीं बन सकता। क्योंकि बच्चे के पास ध्यान की कोई धारणा भी नहीं है और उसे ध्यान की इतनी जरूरत भी नहीं है। क्योंकि जहाँ मन है वहाँ ध्यान की आवश्यकता है। बच्चे के पास तो

बहुत छोटा मन है और वह सुख–दु:ख को बहुत जल्दी भूल सकता है। सहज ही ज्यादा खुश रह सकता है।

खैर! लीलाश्रु तो सच्चे अश्रु हैं ही नहीं। वे रोने का एक नाटक है। फिल्म के अभिनेताओं को, नाट्य कलाकारों को ऐसा अभिनय करना पड़ता है। सुना है कि नारियाँ ऐसे अश्रु आश्रय विशेष लेती हैं। यह तो नितांत ढोंग है। अथवा अभिनय में वास्तविकता लाने की एक कला। परंतु इस बात को छोड़कर रोने की कला को हासिल करके प्रेक्षकों को भी रुला दे ऐसे कलाकार के आंसु काबिलेदाद होते हैं क्योंकि वह रोना उसका ध्यान होता है। वह ध्यान अध्यात्म के स्तर का भले न हो परंतु उसमें नाटक के पात्र के साथ तदात्म्य करना यह भी एक मनोनिग्रह की अवस्था है।

कलाकार को अपनी कला को सफल बनाने के लिए कलामय हो जाना पड़ता है। और इसके लिए वह कला को ही ध्यान बना लेता है। परंतु इससे आगे वह कुछ नहीं सोच सकता। क्योंकि उसकी खोज परमात्मा नहीं है। उसकी खोज है सफलता। और परमात्मा सफलता असफलता के पार है। वह तो एक अतिसफलता है। हर आदमी वहाँ तक नहीं पहुंच सकता। कला शौक का विषय है, परमात्मा समर्पण का। फना हो जाने का, फकीरी का, कुरबानी का।

अगर कलाकार चाहे तो वह शीघ्र ही ध्यानस्थ बन सकता है। और उसका प्रवेश आसानी से भगवद्ता में हो सकता है। परंतु वहाँ लक्ष्य बदलना पड़ता है। फिर वहाँ कलाकार कलाकार नहीं रहता। वह एक उच्च कोटि का साधक बन जाता है। कला का ध्येय सफलता नहीं परंतु जब साधना बन जाए तब ऐसा संभव है।

अब प्रेमाश्रु की बात करें। प्रेम में बहते अश्रु बहुत प्यारे हैं। प्रेमी के अश्रु जब बहते हैं तब वह प्रेम की पराकाष्ठा पर होते हैं। वे पागल जैसे लगते हैं। परंतु वहाँ जब तक केन्द्र में प्रेमी है तब तक उसका मन फिर फिर कर प्रेमपात्र में चिटकता रहता है। जबतक मन अदृश्य नहीं हो जाता तब तक रोना ध्यान नहीं बन सकता। वही प्रेम परिशुद्धि को प्राप्त करता है अथवा अपनी महत्तम ऊंचाई पर पहुंच जाता है तब प्रेमपात्र भगवान बन जाता है। और प्रेमी भक्त। मीरा, सखु, सहजो, दयाबाई, प्रेमानंद, ब्रह्मानंद, भक्त नरसिंह मेहता, दयाराम जैसे अनेक भक्तों को हम इस श्रेणी में रख सकते हैं जिन्होंने अदृश्य को प्रेम किया, साधारण मनुष्य के लिए यह संभव नहीं है। मीरा कहती है कि

असुंवन जल सींच सींच प्रेम बेलि पोई
मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।

– मैंने तो अश्रुओं के जल से प्रेमबेलि को सींचा है।

दोस्तो! प्रेमाश्रु में विरहाश्रु और मिलनाश्रु दोनों का समावेश हो जाता है और दोनों अवस्था आपको ध्यानमग्न करके समाधि अवस्था तक पहुंचा सकती है। प्रेम और भक्ति के विषय में मैंने ध्यान और प्रेम नाम के ग्रंथ में बहुत कुछ कहा है इसलिए यहाँ विस्तार नहीं करूंगी।

अश्रु का छठवां प्रकार है – प्रायश्चिताश्रु। अंगुलीमाल, वालिया लुटारा, कच्छ का जेसल जाड़ेजा जैसे लोग जो क्रूर कठोर घातकी और पिशाची प्रकृति के थे। ऐसे लोग किसी संत के संपर्क में आने से जब रूपांतिरत होकर जाग उठते हैं तब अजाग्रति में बरबाद किए हुए जीवन और दुष्कृत्यो का पश्चाताप शुरु होता है। और वह पश्चाताप अश्रु के रूप में प्रगट होता है।

ज्ञानीजन तो कहते हैं कि प्रायश्चित के आंसु तो सारे पापों को धो देते हैं। बादल बरसकर जब खाली हो जाते हैं तब आसमान निरभ्र, स्वच्छ और साफ-सुथरा हो जाता है। वैसे ही प्रायश्चितों के ताप में पिघलकर मन के विकार जब आंसू बनकर बह जाते हैं तब प्रायश्चित कर्ता का हृदय निरभ्र आसमान जैसा हो जाता है। यह अवस्था चित्त की शुद्धावस्था होती है। तब एक शैतान में एक इन्सान का और उस इन्सान में सच्चे साधक का जन्म होता है।

कभी कभी यह अश्रु भी ध्यानावस्था तक पहुंचा देते हैं। क्योंकि यह अश्रु पावन हैं। समझ की कलियाँ खिलने के बाद उससे टपकी हुई ओस-बूंद के जैसे सुन्दर और शुद्ध है। जिसमें मन की सारी कुरूपता धुल जाती है।

दोस्तो! विश्व के प्रबुद्ध पुरुष जो सुख-दुःख और अपने-पराए के द्वंद्व के पार जा चुके हैं ऐसे लोग भी कभी कभी रो देते हैं। क्यों? क्योंकि वे दूसरों के दुःख को नहीं देख सकते। रावण की तलवार से कटे हुए पंखो वाले जटायु गिद्ध को देखकर राम की आंख में आंसू आ जाते हैं। महाराज बिम्बसार के पशुयज्ञ में एक आदमी को तीन सो भेड़ों को पकड़कर बलि के लिए ले जाते देखकर भगवान बुद्ध की आंखों में आंसु आ जाते हैं। ईसु को स्वयं को सूली लग रही है उसकी फिक्र नहीं परंतु उसके शरीर के साथ अत्याचार करने वालों की मूढावस्था को देखकर ईसू की आंख आंसू से भर जाती है। ऐसे तो कई उदाहरण हैं विश्व के इतिहास में।

दोस्तो! बुद्ध और महावीर जैसे प्रज्ञावान पुरुष का हृदय जब दूसरों की पीड़ा देखकर पिघल उठता है तब उसके हृदय की करुणासरिता

जगतपावनी भागीरथी बनकर अश्रु के रूप में बहने लगती है। यह अश्रु इतने पावन हैं कि पृथ्वी के हजारों जीवों को रूपांतरित कर देते हैं।

दोस्तो! अब आइए ध्यानाश्रु की ओर। ये आठवें प्रकार के अश्रु हैं। बिना किसी आयास प्रयास, बिना किसी मनोभार चिंता, पीड़ा, दुःख, तनाव, या न दिखावे का भाव और न मनोविरेचन की कोई आवश्यकता। फिर भी हृदय की हिमालय जैसी शांति और शीतलता में से साधक की आंखों द्वारा ध्यानस्थ अवस्था में जो अश्रु-गंगा बहती है, वह है ध्यानाश्रु।

इस प्रकार के ध्यान में प्रसन्नता बरसने लगती है। साधक को अनुभव होने लगता है कि अंतरिक्ष में से दिव्य आशीर्वाद बरस रहे हैं। और अस्तित्व की ओर से बरसती हुई दुआओं से पुलकित होकर विविध प्रकार के ध्यानों में साधक के अश्रु बहने लगते हैं। मेरी शिबिरों में ऐसे असंख्य साधको को देखा है कि जहां मन शून्य हो गया है। तो कोई पीड़ा या मन को खाली करने की वृत्ति ही नहीं। साधक हर्ष और शोक के पार चला गया है। फिर भी रो रहा है। रोने का कोई कारण नहीं है। ये भावावस्था की पराकाष्ठा है। यह व्याख्या के परे के भाव हैं। और इस भाव में बहते हुए सहजाश्रु सर्वश्रेष्ठ हैं। वही क्षण है अमन बने रहने की। वे अकारण आंसु साधक के लिए बड़े आनंददायक होते हैं। उसे ज्ञानाश्रु कहो, प्रेमाश्रु कहो, ध्यानाश्रु कहो कि आनन्दाश्रु कहो सब एक है। यहाँ अश्रु उत्तम हैं। ऐसे अश्रुओं का बहना ही समाधिस्थता का प्रमाण है।

प्यारे साधको!

आपको अश्रु ध्यान की ओर ले जाने के पहले मुझे इन आठों प्रकार के आसुंओ को समझाना जरूरी था। अब आईए विधि कि ओर।

मैं कहती हूँ कि हर्षाश्रु, पीड़ाश्रु, प्रेमाश्रु और ध्यानाश्रु इन चारों स्थिति में यदि आप चाहें तो ध्यान में प्रेवश कर सकते हैं। किसी भी व्यक्ति के प्रति प्रेम की वजह से अश्रु बह रहे हैं अथवा किसी भी हर्ष के प्रसंग में आंसु आ रहे हैं अथवा पीड़ा या मनोवेदना आंसु बनकर बह रही है तो तुरंत उस क्षण में प्रवेश कर जाना। क्योंकि हास्य और अश्रु दोनों अवस्था ऐसी हैं कि कुछ क्षणों के लिए तो मन जरूर निर्विचार हो जाता है। उस अमन की अवस्था को आप लंबे अरसे तक स्थिर रख सकते हैं। आपको केवल अश्रु बहने की क्षण में अंतरस्थिति में स्थिर हो जाना है। उस क्षण में मन की दौड़ बंद हो जाती है। क्षण भर के लिए विचारशून्यता छा जाती है। विचारशून्यता की अवस्था में लंबे समय तक रहने से ऊर्जा बचती है। वाणी मौन हो जाती है। शांति बढ़ती है, भीतर परम एकांत छा जाता है। और निर्वेद की स्थिति में प्रवेश होता है।

ऐसे अश्रु बहते हों तब सजग रहें कि कोई सहानुभूति दिखाने के लिए आपको विक्षेप न करे। अगर आपके मन में सहानुभूति पाने की अपेक्षा उठती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि आप किसी को बताना चाहते हैं कि आप रो रहे हैं। यह तो एक बौद्धिक प्रयास हो गया। एक मनोनाटक हो गया। ऐसा होने के साथ ही ध्यान चला जाएगा। एकाग्र अवस्था का भंग हो जाएगा।

दोस्तो! ऐसा मत होने देना। अश्रु को असल रहने देना। आपका रोना दो नंबर का न हो जाए उसके लिए सजग रहना। लोगों का ध्यान खींचने के लिए नहीं रोना है। अगर सहज अश्रु बहते हैं तो बहने दो। अपनी सहजावस्था अथवा जो क्षण रूदन के कारण उत्पन्न हुई है उस क्षण में प्रवेश कर लेना। रूदन के कारण में मत पड़ना। मन को विषयहीन

रहने देना। अगर ऐसा हो गया तो भले किसी भी ध्यान विधि में से आप गुजर रहे हों तो वह अश्रु ध्यान हो जाएगा। आपका ध्यान सफल हो जाएगा। ध्यानश्रु में आपका पूरा भीतरी अस्तित्व मंजकर साफ हो जाएगा और अचानक प्रज्ञा निखर उठेगी।



धारणा - 102

प्रसन्न संत दर्शन ध्यान

ध्यान सूक्ति - 102

पावन प्रसन्न संत को देखि, भाव विशुद्ध प्रगटत है विशेषी।
तेहि अवस्था विद्या रूप है, तेहि क्षण शुद्ध ज्ञान स्वरूप है।।

ध्यान विधि - 102

प्रसन्न संतत्व का दर्शन करके उस क्षण में डूब जाओ और अपने शुद्ध स्वरूप को उपलब्ध हो जाओ ।



कोई प्रसन्न चित्त महात्मा और पावन तीर्थ रूप सद्गुरू मिलते ही आप बदलने लगेंगे। यह बदलाव बौद्धिक स्तर पर नहीं परंतु आंतरिक स्तर पर होगा। दर्शन मात्र से ही आपके भीतर विशुद्ध भाव प्रगट होने लगेंगे। हृदय को शांति मिलने लगेगी। चित्त शांत होने लगेगा बिना कुछ किए। जप, तप, योग के बिना आपमें विद्या का आविर्भाव होने लगेगा। उसके सांनिध्य मात्र से आपको आनंद की अनुभूति होने लगेगी। लगेगा कि आप शांति के महासागर के तट पर बैठे हो। कोई शास्त्र, कोई शब्द, कोई संवाद नहीं फिर भी आपको अहसास होगा कि आप शुद्ध ज्ञान स्वरूप हो। अब कुछ भी करने की, कहीं भी भटकने की या कुछ भी पढ़ने की जरूरत नहीं है। आपके जीवन में ऐसे महात्मा की भेट हो जाए तो उसका दर्शन मत चूकना और हो सके तो संग भी मत छोड़ना।

प्रिय साधको!

लोग कहते हैं कि बुद्ध को दुःखदायक दृश्यों ने जगा दिया। जैसे कि एक वृद्ध, बीमार और शब। परंतु मैं कहती हूँ कि ऐसा नहीं है। पीड़ाकारी दृश्यों ने तो उसके हृदय को पीड़ा से, प्रश्नों से, भय से और करुणा से भर दिया था। उसको जगाया तो है एक प्रसन्न और शांत संत के दर्शन ने।

आचार्य अश्वघोष ने अपनी अद्‌भुत शैली में बुद्धचरित्र लिखा है। उसमें बुद्ध और सारथी छंदक का संवाद भी अद्‌भुत है। राजमहलों में जिसे घुटन महसूस होती थी ऐसे राजकुमार गौतम सारथी छंदक को कहते हैं कि मुझे कहीं बाहर ले जाओ। राजमार्ग पर निकलते ही राजकुमार गौतम की नजरों के सामने एक के बाद एक दुःखदायी दृश्य आते हैं। वृद्ध को देखकर वह सारथी से पूछता है कि यह क्या है? यह कोई पशु है या मनुष्य, अगर मनुष्य है तो ऐसा क्यों हो गया है? उसके शरीर में कोई विकृति आ गई है? तब सारथी कहता है, हाँ। यह विकृति वृद्धत्व की है और देह का धर्म। हर मनुष्य वृद्धत्व में ऐसा हो जाता है। और बीमार भी।

तब सौन्दर्य खो जाता है। मनुष्य पराधीन और विवश बन जाता है। . . . . और फिर? इतने में एक शब दिखाई दिया। तब राजकुमार गौतम सारथी से पूछते हैं कि यह क्या है? यह तो आश्चर्य की बात है कि अपने ही स्वजन को सिंगार करके फूलों से लादकर लोग अपने ही कांधों पर ले जा रहे हैं और दूसरी ओर रो भी रहे हैं? तब सारथी कहता है कि वह अब स्वजन नहीं रहा परंतु केवल एक स्वजन का शब रहा। जो सिंगार किया गया दिखाई देता है वह आदमी तो मर गया। अब उसका शरीर हमेशा हमेशा के लिए निश्चेतन हो गया। इसलिए उसे कांधों पर उठाकर उसके शरीर के अंतिम संस्कार के लिए सब ले जा रहे हैं और उसके विरह में रो भी रहे हैं।

राजकुमार गौतम पूछता है कि एक दिन मैं भी मर जाऊंगा? तब सारथी जवाब देता है –

निःसंशय कालवशेन भावि

हे राजकुमार! इसमें शंका का कोई स्थान नहीं है। प्रत्येक जीव काल के वश है। तब राजकुमार गौतम घबरा जाता है। वह इन सबसे मुक्त रहना चाहता है। वह नहीं चाहता है कि उसकी मृत्यु के पीछे लोग शोक मनाए, मृत्यु के पहले उसका शरीर विकृत हो जाए। मृत्यु शोकमय हो जाए। वह नहीं चाहता था कि भोगविलास में ही उसका जीवन खत्म हो जाए। भोग उसे खा जाए और वृद्धत्व उसे पराधीन कर दे।

उसे अचानक जीवन की बची हुई तीनों अवस्थाओं (ग्रहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, सन्यासाश्रम) को सार्थक करने का विचार आया। वे सोचने लगे कि इसके लिए मुझे क्या करना चाहिए? वह कैसे हो सकता है?

दोस्तो! यह प्रश्न स्मशान वैराग्य जैसा क्षणिक नहीं था। परंतु उसके अस्तित्व के गहन तल से उठा था। सारथी तो निमित्त मात्र था।

मैं मानती हूं कि आपके अस्तित्व में से उठते हुए प्रश्नों का जवाब भी अस्तित्व की ओर से ही मिलता है। इसके लिए निमित्त भले कोई भी बने परंतु जवाब तो किसी अज्ञात विराट की मदद से ही आता है।

राजकुमार गौतम का प्रश्न एक अंतरयुद्ध से प्रगट हुआ था। उसका पूरा अस्तित्व हिल चुका था। बीमारी, बुढ़ापा और मृत्यु को देखकर उसके भीतर एक भयंकर मनोसंघर्ष शुरु हो गया था, दिल बेचैन हो गया था। पूरी चेतना डांवाडोल हो गई थी। और उन्हें अचानक एक सन्यासी दिखाई देता है। वह प्रसन्न था, निर्भय था – बस, बाद में सारथी से या सन्यासी से राजकुमार गौतम का क्या संवाद हुआ इसका वर्णन जरूरी नहीं है परंतु सन्यास में गौतम के सारे प्रश्नों का जवाब था। वह अंतिम और प्रथम मार्ग लगा। प्रथम और अंतिम उपाय लगा। दु:खमुक्त स्थिति की उपलब्धि के लिए और भीतर का समाधान होते ही भीतर से निर्णय आ गया – *"बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि।"*

दोस्तो! यह मेरी समझ है धर्म, और ज्ञानी पुरुषों के चरणों में जाना और प्रबुद्धावस्था में प्रवेश कर लेना एकमात्र उपाय है। दु:खों से बचने का और कोई उपाय नहीं। और वह उस रात सारथी की मदद से घने अंधेरों में कंथक नाम के एक पवन वेगी अश्व पर सवार होकर अपने राज्य की सीमाओं को लांघ देता हैं। वास्तव में सोने की जंजीरें तोड़कर संसार की सीमाओं के पार जाने का यह पहला कदम था।

प्यारे साधको!

जिस ध्यान विधि की ओर हम जा रहे हैं उस ध्यान विधि को समझने के लिए इतनी भूमिका और सत्संग अनिवार्य था इसलिए दिया। विधि कहती है कि जिसका जीवन पावन है ऐसे प्रसन्न संत के दर्शन से मन में विशुद्ध भाव प्रगट होते हैं। यह अवस्था विद्या है (विशुद्ध भाव से विपरीत जो कुछ भी है यह अविद्या है।) और वही क्षण शुद्ध ज्ञान के लिए उचित है।

प्यारे भक्तो!

इस ध्यान विधि को कब करें? कहाँ करें? कितनी देर तक करे? ये प्रश्न मत पूछना। ध्यान की हर विधि अनूठी है। इसलिए एक ही नियम सबमें लागू नहीं हो सकता। मेरी कई बातें आपको एक दूसरे से विपरीत लग सकती हैं। परंतु मुझे ऐसा करना पड़ता है। और कोई उपाय नहीं है। स्टीरियोटाइप बातें करना मैं नहीं जानती हूँ। चेतना के स्तर पर मुझे जो जवाब मिलते हैं उसके आधार पर मैं आपको कुछ न कुछ सुन्दर और अद्‌भुत देने की कोशिश कर रही हूँ।

दोस्तो! हम एक ही ढंग से हर विधि में से नहीं गुजर सकते। प्रत्येक विधि अलग अलग प्रकार की साधना, तैयारी और तपश्चर्या मांगती है। मैं कहती हूँ कि प्रत्येक ध्यान विधियों से गुजरने के लिए कभी कभी पूरा जीवन भी कम पड़ सकता है। क्योंकि जीवन का अंत है। और ध्यान एक अनन्त प्रक्रिया है।

दोस्तो! अब ध्यान दीजिए विधि की ओर। विधि कहती है कि प्रसन्न चित्त संत का दर्शन करते हुए ध्यान मे पहुंच जाओ। परंतु प्रश्न यह

है कि कहाँ मिलेंगे पावन, प्रसन्न और संतत्व से भरे सन्यासी। पहली बात ही कठिन है। ऐसे महापुरुषों के बारे में मैंने दोहे में लिखा है –

शुद्ध माटी संसार में, खोजनी दुर्लभ होय
बीज को वृक्ष बनाइ दे, माटी माटी फिर खोय।

दोस्तो! विशुद्ध मन के प्रफुल्लित संत को कहाँ ढूंढेगे। कठिन है यह कार्य। आपके मठ–मंदिर कैसे लोगों से भरे हैं यह आप अच्छी तरह से जानते हैं। गादीगुरू एवं परंपरागत धर्म गुरुओं से आपका काम नहीं सधेगा। क्योंकि वे तो एक शिष्य परंपरा व वंश परंपरा की परिपाटी के कारण उसका नंबर आया तब बेचारा गुरू बनकर बैठा है। ध्यान तो एक परंपरा–मुक्त अवस्था है। विधियाँ भले परंपरागत हों परंतु परिणाम मुक्ति है।

स्वार्थी, उदास, ढोंगी, दंभी और हर तरह से शिष्यों का शोषण करने वाले तथाकथित गुरुओं को देखकर तो रास्ता बदल लेने का मन होता है। उनके चहरे पर से काम, क्रोध, मद, लोभ सबकुछ टपकता है। आजकल गुरुओं का एक नया प्रकार अस्तित्व में आया है। वह है टी.वी. गुरू। किराए के प्रशंसको से और धन के बल पर बन बैठे गुरू को मीडिया के ज़रिए, बहुत जल्दी प्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। ऐसे गुरुओं को स्वार्थांध शिष्य भी मिल जाते हैं।

दोस्तो! पैंतीस साल की मेरी आध्यात्मिक यात्रा के दौरान लाखों लोग मुझे सुन चुके हैं परंतु जागने वाला लाखों में से कोई एक ही निकलता है। बाकी किसी को न जागना है, न ध्यान में उतरना है, न सत्य को पचाना है। सबको सांसारिक स्तर पर कुछ न कुछ पा लेना है। कुछ गुरू ऐसे मनुष्य की सांसारिक जिजिविषा पूरी करने का सामूहिक ठेका ले

लेते हैं। धर्म के ऐसे ठेकेदारों को देखकर सच्चे खोजी का हृदय विशुद्धता और विद्या का अनुभव कैसे करेगा!

खैर! पावन और प्रसन्न संत के दर्शन के लिए आपको एक सच्चा खोजी बनना पड़ेगा। राजकुमार गौतम सीधा बुद्ध नहीं बन गया था। वह खूब भटका था ऐसे संतों की खोज में। विवेकानंद ने ऐसे संत की खोज में प्राण फूंक दिये थे। ऐसे तो अनेक उदाहरण हैं।

सौराष्ट्र का एक ऐसा बदमाश और बदतमीज जादरा नाम का आदमी संत आपा रता के सांनिध्य में आकर बदल जाता है। फिर जादरा ने संत रता जी को कहा कि मुझे उद्धार का मार्ग बताईए। आपा रता ने उसे प्रसन्न संत दर्शन ध्यान दे दिया और कहा कि रोज ऐसे संत के दर्शन के बिना तुझे पानी तक नहीं पीना है। जादरा ने कहा कि ऐसे संत को कहाँ ढूंढू। मैं रोज आपके पास आ जाऊंगा। रता जी ने कहा मेरे पास नहीं आना है। तेरी खोज तू कर ले। जादरा ने कहा – आपने तो मुझे तकलीफ मे डाल दिया।

रता जी ने कहा कि तेरे गांव में एक कुम्हार भक्त है, उसका नाम है – मेपा भगत। तू रोज उसका दर्शन कर लेना, तेरी साधना पूरी हो जाएगी। संतों का ढंग थोड़ा विशिष्ट होता है। भीड़ के संतों में और सिद्ध संतों में बड़ा फर्क होता है। सच्चे संत भीड़ के लिए कभी विवश नहीं होते। वे तो भीड़ से सजग रहते हैं। और लाखों में से एकाद सही साधक ऐसे संत को पा सकता है।

मेपा भगत के दर्शन के लिए जैसे ही जादरा आया कि मेपा जी ने घर का दरवाजा बंद कर दिया। उसने बिलकुल ज़ेन संतों जैसा रवैया अपनाया। जादरा के लिए तो संत दर्शन ही ध्यान था। जादरा दरवाजे की

दरार से मेपाजी का दर्शन करने की कोशिष करता है तब मेपाजी मिट्टी के बर्तन बनाने का चाक का डंडा लेकर आए और जादरा को पीटने लगे।

आपको प्रश्न उठेगा कि प्रसन्न और विशुद्ध चित्तवान संत किसी को पीट कैसे सकता है? परंतु ऐसा होता है। शिष्य की परीक्षा का यह भी एक तरीका है। शिष्य के समर्पण को जानने का एक मार्ग है। शिष्य का अहंकार जिंदा है कि मर गया इसे समझने का यह भी एक उपाय है। विशेष क्रूर और अहंकारी व्यक्ति जब शिष्य बनने आते हैं तो उसके साथ विशेष ढंग से बरतना पड़ता है।

दोस्तो! साधक की परीक्षा कैसे करनी है, यह तय करने वाले आप कौन? यह तो सद्गुरू ही तय करेंगे। गुरू डंडा उठा रहा है उसका मतलब ही यह है कि उसे आपमें बैठे हुए शिष्य को समझना है। उसे आपके रूपांतरण से संबंध है, आपके धन या पद से नहीं।

दोस्तो! इस विधि में ज्यादा कुछ सिखाने जैसा नहीं है। आपको अपनी आंखें सभानता से खुली रखनी हैं। आपकी खोज आरंभ होनी चाहिए। कंकरों के बीच ही कहीं हीरा पड़ा है। आप ऐसी आंख प्राप्त करो कि हीरे को परख लो, अनुभव कर लो। हो सकता है कि कुछ कड़वे अनुभव भी हो। आप संत असंत का पहचानने में भी धोखा खा सकते हो। परंतु वह भटकन, गलतियाँ, तड़प, अनुभव आपको सत्य तक पहुँचा देंगे।

वैसे ही कोई प्रसन्न चित्त महात्मा और पावन तीर्थ रूप सद्गुरू मिलते ही आप बदलने लगेंगे। यह बदलाव बौद्धिक स्तर पर नहीं परंतु आंतरिक स्तर पर होगा। दर्शन मात्र से ही आपके भीतर विशुद्ध भाव प्रगट होने लगेंगे। हृदय को शांति मिलने लगेगी। चित्त शांत होने लगेगा बिना कुछ किए। जप, तप, योग के बिना आपमें विद्या का आविर्भाव होने

लगेगा। उसके सांनिध्य मात्र से आपको आनंद की अनुभूति होने लगेगी। लगेगा कि आप शांति के महासागर के तट पर बैठे हो। कोई शास्त्र, कोई शब्द, कोई संवाद नहीं फिर भी आपको अहसास होगा कि आप शुद्ध ज्ञान स्वरूप हो। अब कुछ भी करने की, कहीं भी भटकने की या कुछ भी पढ़ने की जरूरत नहीं है। आपके जीवन में ऐसे महात्मा की भेट हो जाए तो उसका दर्शन मत चूकना और हो सके तो संग भी मत छोड़ना।



धारणा - 103

केयोटिक मेडीटेशन

ध्यान सूक्ति - 103

अति शोर हल्ले गुल्ले में, आँख मूंद उतरो भीतर में।
आत्म शक्ति से शांति पाओ, ध्यान से विश्वात्मा हो जाओ।।

ध्यान विधि - 103

शोरगुल के माहोल में आत्मशक्ति के द्वारा स्वयं के भीतर उतरकर विश्वात्मा बन जाओ ।



चारों ओर से आवाजें आ रही हों और माहौल अंधाधुंध हो ऐसी स्थिति में आंखमूंद के आपके भीतर उतर जाओ। और अपने अंतरमन से शांति पाना आरंभ कर दो। अपने भीतर इतनी गहराई में उतर जाओ कि वह क्षण ही परम समाधि का क्षण बन जाए। क्योंकि गहरे कोलाहल में भी अगर गहन मौन में उतरेंगे तो एक स्वतंत्र सन्नाटे का अनुभव होगा। उस क्षण में उतरकर आत्मा से विश्वात्मा बन जाओ।

प्रिय साधको!

अब तक की ज्यादातर ध्यान विधियों में आपको बताया गया है कि शांत, एकांत और शुद्ध स्थान में बैठो। परंतु कुछ विधियाँ अजीब सी हैं। जो ध्यान का अर्थ आंख मूंदकर बैठना, इतना ही जानता है वह आदमी कुछ विशिष्ट अथवा विचित्र विधियों को सुनकर आश्चर्यचकित हो जाता है। परंतु दोस्तो! एक बात हमेशा याद रखना कि यह समग्र सृष्टि एक महाआश्चर्य है।

मैं कहूँगी कि विश्व का मूल ही शांति है। फिर भी शांति की खोज क्यों करनी पड़ती है? इसलिए कि विश्व को मनुष्य ने अशांत बना दिया है। विश्व में छाई हुई अशांति के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार अगर कोई है तो वह मनुष्य है। क्योंकि मनुष्य ने जन्म से ही अशांति की व्यवस्था कर रखी है।

माँ के गर्भ में बच्चा शांति से सोता है। उसका दिल धबकता है। धातुएं बन रही हैं। शरीर का गठन हो रहा है। नौ महीने तक कुदरत ने उसे पाला पोषा परंतु कितनी शांति थी भीतर! जन्म के बाद समाज ने शोर-

गुल की परंपरा शुरु कर दी। लोग कहते हैं कि जन्म के बाद बच्चा रोता नहीं है तो मर जाता है।

मैंने इतिहास में ऐसी कई घटनाएं देखी हैं कि कुछ बच्चे जन्म के तुरंत नहीं रोए हैं। फिर भी जिन्दा रहे हैं और महान विभूति बनके उभरे हैं। जैसे कि अष्टावक्र, महात्मा टोल्स्टोय, शुकदेव, तुलसीदास . . .। मेरी माँ कहती थी तेरा जन्म बारहवे महीने में हुआ। जन्म के वक्त तू नहीं रोई थी। तुझे रुलाने की कोशिश बहुत करनी पड़ी। तू रोती भले नहीं थी परंतु तेरे फेफड़े बराबर चल रहे थे। खैर छोड़ो!

ये तो समाज का स्वभाव है। समाज शोर-गुल में जीता है। एक को दूसरे के रोने में अपनी सलामती लगती है। फिर तो मनुष्य को धीरे धीरे आदत पड़ जाती है, शोर-गुल मचाने की और जीने की। आदमी की एक तकलीफ है, वह शोर-गुल से भी चिड़चिड़ापन महसूस करता है और बिना शोरगुल भी। उसे शांति चाहिए भी और नहीं भी चाहिए। मनुष्य का मन बड़ा विचित्र है। उसे समझना कठिन है।

मैंने अभ्यास किया है कि कभी कभी मनुष्य से पशु ज्यादा समझदार और शांत लगता है। पशु अकारण शोर-गुल नहीं मचाते परंतु आदमी को अकारण शोर-गुल करने की आदत हो गई है। इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण भी है। वह जन्म से ही हर प्रकार से दूसरों पर निर्भर है। पलने में सोया हुआ बच्चा जब तक रोता नहीं तब तक उसकी मांग पूरी नहीं होती। तो यह बचपन का अभ्यास बना हुआ है।

दोस्तो, प्रत्येक मनुष्यका मूल स्वभाव है शांति और आनंद। परंतु जन्म के बाद इतना बड़ा विरोधाभास पैदा होता है कि उन्हें अपने स्वभाव से बिलकुल विपरीत जीना पड़ता है। उसे शांति में उसका अस्तित्व

सुरक्षित नहीं लगता। कोई उसे अंगुली पकड़कर चलाए नहीं तब तक वह पराधीन रहता है। पूर्व की समाज व्यवस्था के अनुसार मनुष्य प्राणी काफी सालों तक पराधीन रहता है। संतों ने कहा है कि पराधीन को स्वप्न में भी सुख नहीं होता।

मानव संतान जब तक स्वनिर्भर हो तब तक तो वह करीब करीब जवान हो जाता है। आज के युग में तो पच्चीस तीस साल तक आदमी कैरियर बनाता रहता है। दुनियाँ के किसी भी जीव को बीस पच्चीस साल तक माता पिता पर निर्भर नहीं रहना पड़ता।

बचपन से लेकर जवानी तक आत्मनिर्भर बनते बनते खुद इतने शोरगुल सुनने और करने के लिए अभ्यासु बन जाता है कि वह बीस पच्चीस साल तक अव्यवस्था को, अंधाधुंध जीवन को अपनी जिन्दगी का एक हिस्सा समझ लेता है। भारतीय समाज ने उसे एक विशेष स्वीकृति दे रखी है।

भारत में पच्चीस साल की उम्र को तो गधापच्चीसी कही जाती है। मतलब, पच्चीस साल तक गधे की तरह जीना भी माफ! मेरी दृष्टि से ये झूठी उदारता और संतान के प्रति मूर्खता पूर्ण सहानुभूति है। पच्चीस साल तक गधे जैसा जीने के बाद आदमी को गधेपन का अभ्यास हो जाता है। फिर, फिर से इन्सान बनने में और कितने साल निकल जाए ये नहीं कह सकते।

अठारह साल तक कानून भी आदमी को नाबालिग मानता है। इन सब दायरों में रहकर मनुष्य पराधीनता के कारण अंधाधुंधी का इतना अभ्यासू हो जाता है कि फिर अंधाधुंध के बिना जीना उसके लिए असंभव

हो जाता है। फिर शोरगुल में रस लेना उसका स्वभाव हो जाता है। और ऐसे लोगों की भीड़ को समाज कहा जाता है।

जिस समाज में अंधाधुंधी फैलाना, शोर–गुल करना और धांधल मचाना ही उसके अस्तित्व का एक हिस्सा हो उस समाज में कौन किसको रोके? कौन किसको टोके? कौन किसको समझाए? शराब के पीठे में सब नशे में।

जहाँ अंधाधुंधी में ही लोग मजा ले रहे हैं वहां शांति बेचारी हो जाएगी। शांतिदूतों को लोग पागल कहेंगे। ध्यानी को धुनी कहेंगे। मौन में रहने वाले को मक्कार या धूर्त कहेंगे क्योंकि ऐसा कहने वालों के पास शांति, मौन और ध्यान का कोई अनुभव ही नहीं है।

एक बड़ा प्रचलित उदाहरण है, शायद आपने सुना होगा। एक आदमी रेल्वे स्टेशन के पास रहता था। आती जाती ट्रेनों की घरघराहट से दिन रात आवाजें आती रहती थीं। शादी के बाद पत्नी ने कहा कि यहाँ तो बहुत कोलाहल है, पूरा घर हिल रहा है ट्रेन आने के वक्त। चलो घर बदल लें। पत्नी की खुशी के लिए पति ने शांत विस्तार में घर तो ले लिया परंतु अब पति की नींद उड़ गई। पति कुछ दिनों में पागल जैसा हो गया। उसने पत्नी को कहा, तू शांति से घर में रह ले; मुझे ट्रेनों की आदत हो गई है, मैं चला प्लेटफोर्म पर सोने के लिए। और वह आदमी रेल्वे प्लेटफार्म पर आकर थोड़ी ही देर में खर्राटे भरने लगा।

प्यारे साधको!

यह कोई मजाक की बात नहीं है। यह एक मनोवैज्ञानिक वास्तविकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कोलाहल या अंधाधुंध माहोल में भी आदमी

को शांति मिल सकती है। खैर! अब ज्यादा बौधिक अर्थघटन में उतरने की जगह सीधेध्यान विधि की ओर जाना चाहती हूँ।

विधि कहती है कि चारों ओर से आवाजें आ रही हों और माहौल अंधाधुंध हो ऐसी स्थिति में आंखमूंद के आपके भीतर उतर जाओ। और अपने अंतरमन से शांति पाना आरंभ कर दो। अपने भीतर इतनी गहराई में उतर जाओ कि वह क्षण ही परम समाधि का क्षण बन जाए। क्योंकि गहरे कोलाहल में भी अगर गहन मौन में उतरेंगे तो एक स्वतंत्र सन्नाटे का अनुभव होगा। उस क्षण में उतरकर आत्मा से विश्वात्मा बन जाओ।

प्यारे साधको!

यहाँ प्रश्न नहीं उठाना कि अंधाधुंध माहोल में शांति कैसे बनेगी? शोर-गुल और अव्यवस्था में आदमी सो सकता है, खा सकता है, रह सकता है तो शांति में क्यों नहीं उतर सकता? साधारण आदमी जो अंधाधुंध माहैल में और शोर-गुल में भी सो जाता है। वहां उसका संबंध शरीर और मस्तिष्क की मूर्छा से है। वह मूर्छा उसे शोर-गुल के प्रति असजग बना देती है। और धीरे धीरे वह आदत बन जाती है।

आदमी अगर अंधाधुंधी के प्रति जाग्रत हो जाए और ध्यान में जाने की समझ न हो तो ऐसी स्थिति में वह पागल हो जाएगा। न घर का न घाट का जैसी स्थिति हो जाएगी। इसलिए सामान्य मनुष्य ने बाहर की अंधाधुंधी के साथ कदमताल शुरु कर दिया है। जहाँ ताल नहीं मिला उस तरफ बे-ध्यान हो जाता है परंतु असजगता से।

दोस्तो! इस विधि में आपको भी उस शोर-गुल के प्रति दुर्लक्ष्य रहना है परंतु सजगता के साथ। साधारण मनुष्य और ध्यानी में इतना ही फर्क है। वर्षों पहले में जूनागढ़ में रहती थी। वहाँ का एक किस्सा याद आ

रहा है। मेरे पड़ोस में दो बहने रहती थीं. वैसे तो दोनों को चिल्ला चिल्लाकर बोलने की आदत थी परंतु जब एक की चिल्लाहट दूसरी को विक्षिप्त करती थी तब दूसरी चिढ़ जाती थी और पहली को कहती थी कि धीरे बोल! वह धीरे शब्द तीन घर तक सुनाई देता था। और छोटी बहन झुंझलाकर ज़ोर से जवाब देती थी कि अरे! धीरे तो बोल रही हूँ! यह आवाज चौथे घर तक सुनाई देती थी।

दोस्तो! ज्यादातर समाज ऐसा ही जी रहा है और ऐसे ही बोल रहा है। हर आदमी झुंझलाया हुआ, चिड़चिड़ेपन से पीड़ित और अर्धपागल जैसा है। थोड़ी देर में झगड़ते हैं और वही लोग थोड़ी देर के बाद नि:संकोच हंस हंस के बाते भी करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे बच्चे जैसे निर्दोष या उदार हैं। इसका अर्थ यह है कि मानव सजग नहीं है। परंतु अपने स्वार्थ में सजग है। कोई स्वयं को बदलने के लिए तैयार नहीं है। कोई किसीकी मानने के लिए तैयार नहीं है। सब चाहते हैं कि दूसरा बदल जाए। परंतु कोई ठोस परिणाम नहीं आ रहा है। तब सबने एक समाधानकारी वलण अपना लिया है। सब कोम्प्रोमाईज करके जी रहे हैं। अंडरस्टेन्डिग से नहीं। सब अंडरप्रेशर हैं।

दोस्तो! सबके हाथ में एक अदृश्य टाईम-बॉम्ब है, कौन कब बटन दबा दे पता नहीं। सब सबसे भयभीत हैं। सबको सबकी जरूरत है। सब सबका लाभ भी लेते हैं। सब सबकी मदद भी करते हैं। और सब सबकी बुराई भी। सब सबको दबाने की कोशिश कर रहे हैं और सब सबसे दबे हुए भी हैं। स्वस्थ समाज का दर्शन कहीं भी नहीं हो रहा है।

मैं कहती हूं कि स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए मनुष्य केओस तो नहीं हटा पाएगा परंतु केओस के पार जाने की कला सीखनी होगी।

धांधल धमाल में छिपे हुए सन्नाटे को सुनने की क्षमता विकसित करनी होगी। अंतर की गहराईयों को झांकना होगा और स्वयं को जानना होगा। यही है ध्यान की प्रारंभिक भूमिका।

प्यारे साधको!

समाज में फैली हुई अव्यवस्था को तत्काल दूर करने का कोई उपाय नहीं है। अगर अस्तित्व महाप्रलय कर दे तो बात अलग है। परंतु दोस्तो! दुनियाँ इतनी बुरी भी नहीं कि हम महाविनाश का विचार करें। महाविनाश का विचार इसलिए जरूरी नहीं है कि अंधाधुंधी में जीते जीते मनुष्य ने अंधाधुंध प्रगति की है। मनुष्य जाति की काफी ऊर्जा इस विकसित विश्व में खर्च हो चुकी है। उसे खत्म करने के विचार से ध्यान का विचार सुन्दर और रचनात्मक लगता है।

मेरी दृष्टि से ध्यान का अर्थ है – अपनी आंतरिक अंधाधुंधी को खत्म कर देना।

दोस्तो, ध्यान भीतर की शांति को जन्म देता है, ध्यान भीड़ में संभव नहीं है। किसी ओशो ने पांच हजार लोगों को ध्यान में बिठा दिया तो क्या आप ऐसा मानते हैं कि सब ध्यान में उतर गए! न ना। ये ध्यान कराने वालो के प्रति मेरी नकारात्मकता नहीं है परंतु मैं आपको बड़े भ्रम और छलना से बाहर लाना चाहती हूँ। कोई तर्क करे कि बुद्ध के समय में दस दस हजार लोग ध्यान में बैठते थे और हजारों लोगों को ध्यान लगता था तो क्या ये गलत है? तो मैं कहूँगी कि वह समय अलग था और आज का समय अलग। तीन हजार साल पहले का मानस अलग था और आज का मानस अलग। तब काफी शांति का युग था और आज आदमी पागल की तरह दौड़ रहा है। तब बुद्ध की मौजूदगी थी। आज बुद्धुओं ने ध्यान

और योग का सत्यानाश कर दिया है। आज ध्यान कम और ध्यान के नाम पर धंधे ज्यादा चल रहे हैं।

कोसों तक पैदल चलकर विहार करना, भिक्षा मांगना, अपना काम स्वयं करना और फिर समय निकालकर ध्यान में उत्सुक होना; बुद्ध का युग ध्यान और ध्यानियों के लिए एक स्वर्णिम युग था और आज सबकुछ काम आदमी नहीं मशीन कर रहा है। फिर भी आदमी इतना असुख में क्यो है? क्योंकि ऊर्जा को उचित मोड़ नहीं दे पाता है। और फालतू ऊर्जा उधम मचाती रहती है।

बेचारा आदमी धमाल कर सकता है परंतु ध्यान नहीं कर पाता। धमाल मस्ती कोई गलत चीज नहीं है परंतु साथ साथ ध्यान में उतरना सीख लेंगे तो आपका धमाल भी सार्थक हो जाएगा।

खैर! ध्यान विधि के पहले यह सब कहना मुझे जरूरी लगा इसलिए कहा। और मैं यह भी कह रही हूँ कि आज का युग ध्यान के लिए सर्वोत्तम युग है। क्योंकि मशीन ने मनुष्य का सारा भार उठा लिया है। मनुष्य चाहे तो बचे हुए समय का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करके खुद को और दुनिया को एक प्रसन्न और शांत विश्व में बदल सकता है। परंतु वह स्वयं अशांत है। इच्छाएं और चालाकियाँ इतनी बढ़ गई हैं कि एक आदमी के लिए हजार मशीन भी कम पड़ जाएं।

आदमी ने मशीन सुख सुविधा के लिए बनाया परंतु मशीन ने आदमी को दुःखी कर दिया। एक अर्थ में मनुष्य को खत्म कर दिया। मशीनो ने केओस खड़ा कर दिया आदमी के ईर्द गिर्द। आज का आदमी अर्ध दग्ध सा हो गया है। वह सन्यास की ओर कदम नहीं उठा सकता और

संसार को सुलझा नहीं सकता। दोनों में से एक बात सध जाए तो ध्यान आसान हो जाएगा। परंतु बेचारा आदमी धोबी के कुत्ते जैसा बन गया है।

खैर! आप कहेंगे कि ऐसे माहौल में ध्यान कैसे करेंगे। मैं कहूँगी कि ऐसे माहौल में ध्यान कर पाओ इसके लिए मेरा ध्यान–शास्त्र आपको रास्ता दिखाता है, आपको कूंजी दे देता है। जिससे आपके सामने ध्यान का पूरा विश्व खुल जाए, शांति का स्वर्ग खुल जाए। मुक्ति का द्वार खुल जाए।

दोस्तो, इस विधि में आपको कुछ ज्यादा नहीं करना है। आपको थोड़ा विशेष रूप से जागना है। यह विधि कोई बंद कमरे में, या कौने में, या जंगल में जाकर करने के लिए नहीं है। यह तो चलते फिरते करने की एक विधि है। आपकी इर्द गिर्द की विक्षेप करने वाले स्थिति के बीच रहकर स्थिर होने की कला आपको विकसित करनी है। यह ध्यान विधि एक चैलेन्ज है। यह चुनौति आपको किसीके सामने नहीं उठानी है। यह तो स्वयं के सामने है। स्वयं को दाव पर लगाना है। सोक्रेटिस और तुकाराम जैसे संत ऐसे माहौल में भी ध्यानस्थ रहते थे।

एक बार सोक्रेटिस अपने दोस्तों के साथ बैठकर सत्संग कर रहा था। पत्नी ने बड़बड़ाहट शुरु कर दी। उसे सोक्रेटिस का सत्संग और सजगता गंवारा नहीं थे। वह चाहती थी कि उसके घर कोई न आए। स्वाभाविक है कि जो सोए रहना चाहता है वह हमेशा चाहेगा कि और लोग भी सोते रहें या सो जाएं। ताकि खुद को विक्षेप न हो। औ जागा हुआ हमेशा चाहेगा कि उसके साथ कोई और भी जागे। थोड़ी देर तो पत्नी का बड़बड़ाना शुरु रहा परंतु सोक्रेटिस का ध्यान भंग (शांति–सत्संग भंग) नहीं हुआ। तब उसकी पत्नी ने बर्तनों की झूठन की टोकरी लाकर

सबके बीच बैठे हुए सोक्रेटिस के सर पर डाल दी। सोक्रेटिस ने हंसकर कहा कि वाह! पहले बिजली की गड़गड़ाहट और बाद में कड़ककर गिरना!

प्यारे दोस्तो!

बस यही है कैयोटिक मेडीटेशन। कैयोटिक मेडीटेशन का अर्थ यह नहीं करना कि पहले आप केयोस खड़ा करें और फिर आप शांति में उतरें। अगर किसी ने ऐसा सिखाया है तो यह गलत है। परंतु इतना ही करना कि शोर-गुल, अंधाधुंध माहौल और अनेक प्रकार के विक्षेप और विघ्न भरे माहौल में भी आप अपनी शांति बनाए रखे।

एक बार संत तुकाराम अपनी पत्नी के लिए गन्ना लाए। पत्नी क्रोधित थी उसने घर सर पे ले लिया और पति की ओर गन्ना फैंका। तो तुकाराम के सर पर टकरा कर गन्ने के दो टुकड़े हो गए और एक टुकड़ा तुकाराम की गोदी में गिरा। तुकाराम ने पत्नी को कहा कि हे प्रिये! तुझे मेरे ऊपर कितना प्रेम है कि तूने गन्ना अकेला नहीं खाया पर एक टुकड़ा मुझे भी दिया। ये है केयोटिक मेडिटेशन।

दोस्तो! शोर-गुल, गुस्सा, धांधल धमाल के माहौल में भी आप अपनी शांति बनाए रखना सीखो। यह केवल ध्यानस्थ होने से, अंतरमुखी होने से, बाहर प्रतिपल बदलते माहौल के प्रति और बदलते रहते मनुष्य के प्रति सजग रहने से ही हो पाएगा।

दोस्तो! आम आदमी क्रोधी के साथ क्रोधी बन जाता है, कामी के साथ कामी और लोभी के साथ लोभी बन जाता है। परंतु ध्यानी सबके बीच में भी ध्यानी ही रहता है।

आप अपने इर्द-गिर्द के माहौल से विक्षिप्त हुए बिना अभ्यास करो। अपने भीतर से शांति पाने का प्रयास करो। बाहर की गड़बड़ से भीतर की शांति को खंडित मत होने दो। आत्मशक्ति से शांति को विकसित करते जाओ। आप अनुभव करेंगे कि हल्ला गुल्ला, कोलाहल, अंधाधुंधी और शोरगुल छोटा बनता जाएगा और आपके अकेले की शांति बड़ी।

संभव है तो आंख मूंदकर अपने भीतर उतर जाओ। धीरे धीरे आपको अनुभव होगा कि आप विश्वात्मा हो। शांति तो सबके भीतर है परंतु वे अनुभव नहीं ले रहे हैं। और आप उसका मज़ा उठा रहे हैं।

दोस्तो! एक बात याद रहे, शोर-गुल पैदा किया हुआ है परंतु शांति सबसे पुरातन और शाश्वत है। शांति विश्व का मूल है। अखंड है। दोस्तो, पूरे ब्रह्मांड को एक साथ अशांत करने का कोई उपाय नहीं है। मनुष्य एकाद टापू, ग्रह या उपग्रह को अशांत कर सकता है परंतु सारे ब्रह्मांड को कभी भी अशांति से नहीं भर पाएगा। यही प्रमाण है कि शांति शाश्वत और विराट है। वही आपका असल स्वरूप है। तो अब तीव्र भाव से उतरो शांति में और इस ध्यान के द्वारा अंधाधुंध माहौल का अतिक्रमण कर जाओ।





धारणा - 104

विरेचन पद्धति

ध्यान सूक्ति - 104

साधक जब मन अति विक्षिप्ता, क्रोधादिक से हृदय संतप्ता।
करो विरेचन दूषित भाव का, त्वरित अनुभव निज स्वरूप का।।

ध्यान विधि - 104

क्रोध आदि दूषित भावों
से हृदय दग्ध हो तब
दूषित भावों का किसी भी
तरीके से मनोविरेचन
करके निज स्वरूप में
स्थिर हो जाओ ।



मन जब अति विक्षिप्त हो, चित्त अस्थिर हो अथवा क्रोधादि भावों से हृदय संतप्त हो तो मन के दूषित भावों का विरेचन कर दो और तुरंत ही निज स्वरूप का अनुभव करो।

प्रिय साधको!

इस ग्रंथ में कभी कभी आपको लगेगा कि कुछ विधियाँ परस्पर विरोधी हैं। जो मैं पहले भी कह चुकी हूँ। परंतु फिर से एक बार स्पष्टता करती हूं कि प्रत्येक विधि स्वतंत्र है। एक दूसरे के विरोध में नहीं हैं। तंत्र कहता है कि प्रेम में भी आनंद है, आंसु में भी आनन्द है। खुशी में भी आनंद है, शोर–गुल में भी आनंद है और क्रोध की पराकाष्ठा में भी आप अचानक सजग होकर भीतर की ओर मुड़ जाओ तो वहाँ भी शांति और आनंद का अनुभव है।

विधि कहती है कि मन जब अति विक्षिप्त हो, चित्त अस्थिर हो अथवा क्रोधादि भावों से हृदय संतप्त हो तो मन के दूषित भावों का विरेचन कर दो और तुरंत ही निज स्वरूप का अनुभव करो।

प्रिय साधको!

इसके पहले की ध्यान विधि में हृदय को संतप्त करे ऐसे अंधाधुंध माहौल में साक्षी होकर ध्यानस्थ होने की बात बता चुकी हूँ। आपको होगा कि अब यह कैसी विधि है कि मनोविरेचन की बात आ रही है और

क्रोधादि भावों की उल्टी करने की बात हो रही है! हाँ, दोस्तो यह सत्य है और परम सत्य है। विविध ध्यान विधि, विविध मनुष्य के मन को लक्ष्य में रखकर दी जाती है। हर मनुष्य की क्षमता साक्षी भाव में जीने की नहीं हो सकती। हर मनुष्य इतना सजग नहीं रह सकता कि हर हाल में शांत रहे। तो यहाँ साधारण व्यक्ति के लिए भी एक विधि निरूपित की गई है। प्यारे साधको!

शास्त्र मन को सूक्ष्म कहते हैं और शरीर को स्थूल। परंतु दूसरे अर्थ में मैं कहूंगी कि शरीर से तो मन अनेक गुना स्थूल है, बड़ा है। शरीर तो बहुत छोटा है। कैसे? झरा समझ लें।

शरीर कुछ वर्ष पहले दुनियां में आया परंतु हमारे मनीषी कहते हैं कि शरीर मन के कारण पृथ्वी पर आया है। अर्थात मन पुराना है, बड़ा है, उतना बड़ा कि उसके कारण वह शरीर को धरती तक खींच लाया। हमारे उपनिषद कहते हैं कि बार बार जन्म और मृत्यु अथवा बंधन और मुक्ति मन के कारण हैं। तो इसका अर्थ यह हुआ कि मन ही सबकी जड़ है। मन सबसे बड़ा बंधन है। तंत्र और योग कहता है कि आप हमारे बताए हुए विधान के द्वारा मन के पार हो जाओ।

मैं मन को शरीर से अनेक गुना बड़ा इसलिए कह रही हूँ कि उसकी गति शरीर से अनेक गुनी है। शरीर एक कदम चलता है उतनी देर में तो मन लाखों गुना चलकर आगे निकल जाता है। मन अमाप गति से प्रतिपल बड़ा होता जाता है। मन विचारों का जाल है। शरीर जितने दिन, महीने या साल का होता है उतने समय में तो मन उससे करोडों गुने विचार बुन देता है और वह विचार जाल ही मन है।

पश्चिम का चिंतन पूर्व से भिन्न है। पश्चिम के चिंतक के पास मन के पार जाने की कोई विद्या नहीं है। वह भाग–दौड़ करके ज्यादा अव्यवस्था पैदा करने वाले मन को बीमार मन कहते हैं और वे कहते हैं कि उसे स्वस्थ करने के उपाय हैं। उसे स्वस्थ किया जा सकता है। पश्चिम का विज्ञान मन को स्वस्थ करने की दवाईयाँ देते हैं। और पूर्व की विद्या मन की स्वस्थता – अस्वस्थता की बात में पड़े बिना सीधी ऐसी विधियाँ देते हैं कि जो मन के पार ले जाएं, मन का अतिक्रमण हो जो।

दोस्तो! केथारसिस भी एक ऐसी ही विधी है। उसे कुछ ज्ञानी जनों ने पार्शियल मेडीटेश (ध्यान का एक भाग) के रूप में स्वीकारा है। मैं कहती हूँ कि अजाग्रति ही मन की रुग्णता है और जाग्रति स्वास्थ्य है। जाग्रति अर्थात मन की लपेट में न आने वाली अवस्था। और अजाग्रति अर्थात आपके ऊपर मन की मालकियत।

दोस्तो! मैं तो केथारसिस को ध्यान के लिए भीतर जगह करने की विधि कहूँगी।

प्रिय साधको!

हमारे आयुर्वेदाचार्य पेट के दूषित होने पर विरेचन पद्धति बताते हैं। अर्थात रेचक पदार्थ खाकर पेट की गंदगी को बाहर फैंकने की विधि। तंत्र के अनुसार मन की गंदगी को बाहर फैंकने की कोई खास विधि नहीं है, वह मन के पार चले जाने को कहता है क्योंकि मन ही बीमारी का कारण है। मन स्वयं एक रोग है। एक ऐसा रोग कि वह कैरियर का काम करता रहता है। मन के हटते ही रुग्णता का फैलना बंद हो जाता है।

सोक्रेटिस के शिष्य प्लेटो ने कहा है कि मनोविरेचन से आदमी हल्का हो जाता है। यह बात कुछ हद तक स्वीकार्य है परंतु वह क्षणिक है।

वह कायमी उपाय नहीं है। मन बार बार दूषित होता रहता है और बार बार विरेचन करना पड़ता है। जबकि ध्यान में एक बार सही प्रवेश हो गया तो फिर हो गया, सजगता आ गई, समझ विकसित हो गई, मनोबीमारियाँ गईं, साधक स्वस्थ हो गया। स्वास्थ्य का अर्थ है स्वयं में स्थिर होना।

प्यारे साधको!

मैं कहूँगी कि कैथारसिस यानि मनोविरेचन ध्यान के लिए आपको खाली करता है। आपमें स्वच्छता पैदा करता है। आपमें एक शांत जगह तैयार करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कैथार्सिस मैथड से ध्यानी को थोड़ा सहयोग मिल जाता है। इसलिए मैंने यहां कैथार्सिस को एक धारणा के रूप में समझाने की कोशिश की है।

आज का मनुष्य दंभ में जी रहा है। मनुष्य खुश हो या ना हो परंतु हर आदमी आज ऐसा दिखावा करना चाहता है कि वह खुश है। मनुष्य ने अपनी सहजता खो दी है। वह न तो आसानी से रो सकता है न हँस सकता है। आज की तुलना में पहले का मनुष्य बहुत सरल था। वह सहजता से हंस सकता था, रो सकता था, नाच सकता था। आज शहरी करण के नाम से मनुष्य पर सिविलाईज़ेशन का एक नकाब चढ़ा दिया गया है। आज का जीवन एक समूह जीवन न रहकर ग्रुपिज़्म का शिकार हो गया है। अपनी सहजता में जीने वाले को पागल माना जाता है। जैसे चित्रकार, गायक, नृत्यकार, वाद्यकार, ध्यानी वे सब अपनी सहजता में जीते हैं परंतु आज के सुधरे हुए लोग नाम को पहचानते हैं, कला को नहीं।

लोगों का चले तो कौने में बैठकर अपनी कला की आराधना में मस्त रहने वालों की मस्ती छीन लें अथवा उन्हें अलग सोसायटी देकर आइसोलेट कर दें। लोग कला का लाभ लेना चाहते हैं, वे चाहते हैं कि

कला के द्वारा दो कौड़ी के आदमी का भी एन्टरटेनमेन्ट हो, परंतु सच्चे कलाकार की धुन और मस्ती अथवा स्वतंत्रता उन्हें मंजूर नहीं है।

हाकारात्मक चीजों के साथ भी आदमी इतना दंभी और कठोर हो गया है कि काम, क्रोध, लोभ जैसी सहज मानवीय प्रकृति को वह कितना दबाता होगा। आज के मनुष्य में खान-पान और माहौल की वजह से काम ऊर्जा बढ़ गई है। वासनाएं अतृप्त रहने से क्रोध बढ़ता जा रहा है। और मंहगाई और स्पर्धा के माहौल के कारण लोभ बढ़ रहा है। फिर भी हर आदमी ने उसे छिपाने के लिए सज्जनता का नकाब चढ़ा लिया है।

हर चीज से पर्दे कर लिए हैं। पर्दे के पीछे सबकुछ चलेगा। परंतु दिखने तो चाहिए अ-क्रोधी, अ-कामी, निर्लोभी। खैर! ये सारी परिस्थितियाँ धर्मों के नाम पर थोपी हुई बातों का ही परिणाम है। और वह धीरे धीरे तथाकथित समाजिकता बनती गई है। जिसने मनुष्य को इतना सप्रेस करके रखा है कि वह आंख बंद करके बैठना चाहे तो भी नहीं बैठ सकता।

दोस्तो! मन की शांति कौन नहीं चाहता! आज हर आदमी शांति के पीछे पागल है। और इसका लाभ लेकर कुछ साधु-बाबा शांति को धर्म के बाजार में बेचने के लिए निकल पड़े हैं और बेचारे मूढ लोग शांति को खरीदने के लिए कतार में खड़े हैं।

दोस्तो! आंख मूंद के ध्यान में बैठकर स्थिर होना चाहता तो है परंतु जैसे ही आंख बंद की कि दबी हुई वृत्तियाँ चित्त पटल पर उभर आती हैं। इसमें बाबा भी क्या करें? और विधि भी क्या करे? आदमी बेचारा ध्यान करेगा कैसे? मानवी वृत्तियाँ उसे बहुत परेशान कर रही हैं। ऐसे लोग जब ध्यान करते हैं तब उसके ललाट में भौंहे के बीच शिकन पड़ती है। वह क्या दिखाता है। स्ट्रेस, सप्रेशन, दबाव . . . वह तो कुछ और

देखना चाहता है। उसके मन को आंखें बंद रहें वह मंजूर नहीं है। वह कुछ और सोचना चाहता है। मन को स्थिर नहीं होना है। इन्द्रियाँ बहुत कुछ करना चाहती हैं। वे स्थिर नहीं रह पाते।

मेरी ध्यान शिबिर में आने वाले लोगों को मैं देखती हूँ। कभी कभी कुछ गलत लोग सही जगह पर आ जाते हैं। तब वे परेशान हो जाते हैं। भीतर से अस्वस्थ और वृत्तियों को दबाकर बैठे हुए लोग बार बार आंख खोलते हैं, अपने इर्द-गिर्द देख लेते हैं। कभी हाथ-पैर हिलते हैं, कभी सर खुजलाते हैं, कभी नासिका से अनावश्यक आवाज करते हैं और ऐसे लोग ध्यानस्थ लोगों के देखकर आश्चर्य में डूब जाते हैं। उन्हें पता भी नहीं होता कि वे दूसरों को विक्षेप कर रहे हैं। और दूसरों की शांति को देखकर खुद विक्षिप्त हो रहे हैं।

उन लोगो की चले तो वे सबका हाथ पकड़कर ध्यान में से जगा दें कि आँख मूंदकर क्यों बैठे हो? चुप क्यों हो? सब चंचल हो जाओ, फालतू बातें करो, ये शांति में क्या रखा है? क्यों मूढ की भांति आंख मूंद के बैठे हो? मेरी ओर देखते क्यों नहीं? पता नहीं कि मैं बोर हो रहा हूँ! – ऐसे लोगों को लगता है कि शांत लोगों के कारण वे उपेक्षित हो रहे हैं।

ऐसे लोगों के लिए तंत्र कहता है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य आदि छः मानवीय चित्तगत वृत्ति अथवा दोष में से किसी भी एक उत्कट चित्त वृत्ति में धारणा को स्थिर कर दो। आप पहले स्वयं को जान लो कि आप किस वृत्ति पर खड़े हो। आपका चित्त सबसे ज्यादा किस वृत्ति की ओर आकर्षित हो रहा है। और अगर यह राज़ आपके हाथ लग जाए तो जो वृत्ति प्रबल है उसमें अपनी धारणा को स्थिर कर दो।

ऐसा होने से अन्य समस्त वृत्तियाँ शांत हो जाएंगी। जब अन्य वृत्तियाँ शांत हो गई ऐसा अनुभव हो तब तुरंत साधक को निरंतर स्पंदनशील स्वस्वरूप में स्थिर हो जान चाहिए। जिससे उसकी वृत्तियाँ फिर से बहिर्मुख न हों। परंतु साधको! यह तो शिव की भाषा है। हर आदमी इसे नहीं समझ पाएगा। तंत्राचार्य क्षेमराज स्पंदनिर्णय में भी इस बात को कहते हैं परंतु आज के मनुष्य के लिए उसकी भाषा को समझना कठिन है। अब ज़रा बात को सरल करके समझने की कोशिश करें।

प्यारे साधको!

आप ध्यान में उतरना चाहते हो परंतु आपको वासनाएं सता रही हैं। मनोवृत्तियाँ बाहर आ रही हैं। सीधे ही मन के पार जाने की क्षमता नहीं है। और सहजता से आप मन को नियंत्रित भी नहीं कर सकते हैं। न मन छूटता है ना आप ध्यान को छोड़ सकते हैं। ऐसी उलझी हुई मन:स्थिति में और एक अर्थ में साधना की अपरिपक्व अवस्था में क्या करेंगे?

आप पहले जान लो कि आपकी कौन सी वृत्ति प्रबल है? लोभ या वासना? काम या वासना या क्रोध का भाव? सबसे ज्यादा आपको कौन सताता है अथवा आप किससे परेशान हो! कौन आपको अस्थिर कर रहा है! दृष्टांतरूप मान लो कि क्रोध आपको परेशान कर रहा है। तो सीधे ध्यान में मत बैठो, समय मत गंवाओ, क्रोध को बाहर निकाल दो, विकृत ऊर्जा को बाहर फैंक दो; जिस क्रोध को आप ज़ाहिर में बाहर नहीं निकाल सकते हो। मानो कि आपका मन गुस्से से भरा है आपको चिल्लाना है, आपको उछलना है, कूदना है, सर फोड़ना है, दूसरे पर क्रोध नहीं उतार सकते हो तो खुद पर उतारना है, कपड़े फाड़ने हैं, बर्तन फैंकने हैं, अगर ऐसा नहीं करेंग तो आपको लगता है कि आप पागल हो जाएंगे। क्रोध का

ज्वालामुखी भीतर से फट रहा है, आपको किसीसे बदला लेना है परंतु आप सीधे ढंग से जाहिर में इनमें से कुछ भी नहीं कर सकते। पड़ौसी सुनेंगे तो सोसाईटी में इज़्ज़त नहीं रहेगी, सगे संबंधी को पता चलेगा तो छबि खराब हो जाएगी, बच्चे देख लेंगे तो गलत बातें सीख लेंगे।

दोस्तो! आज के मनुष्य की इज़्ज़त सत्य में नहीं, दंभ में है। आपको रोना है, फूट फूट कर रोना है परंतु आप रोएंगे तो दुनियां को पता चल जाएगा कि आप मजबूर हैं, लाचार हैं, कमजोर है, दु:खी हैं। आप नहीं चाहते हैं कि सुख का नकाब उतर जाए। ऐसा तो कई बातों में होता है।

दोस्तो! मैं कहती हूँ कि ध्यान में बैठने से पहले सारे दबाव, तनाव, दंभ, आदि में से बाहर निकल जाओ। बाद में ही ध्यान आपकी मदद कर पाएगा। अगर आप एक साधारण आदमी हैं और एक ही जंप में सारी वृत्तियों के पार जाकर ध्यान में नहीं उतर सकते हैं तो फिर मनोविरेचन आपका इलाज है।

दोस्तो! मैं कहती हूँ कि ऐसे स्थान पर चले जाओ कि जहाँ आप रो सको, चिल्ला सको, कूद सको, उछल सको, जो मन में आए वो कर सको, अपना सारा पागलपन और वृत्तियों को बाहर निकलने दो, मन के दोषों को खुलकर वमन करने दो। जब सारा फोर्स निकल जाएगा तब आप स्वयं को सहज और हल्के महसूस करेंगे। मन शांत हो जाएगा। क्योंकि उसको बहुत कुछ कहना था, करना था, जो तथाकथित समझदार लोगों के समाज में नहीं कर सकता था। वह सबकुछ एकांत में कर पाया।

आज के मनुष्य की सबसे बड़ी मजबूरी यह है कि जो नहीं करना चाहता है वह कर रहा है और जो करना चाहता है वो नहीं हो पाता है। उसके लिए वह खुद ही जिम्मेदार है।

पहले से ही अगर मनुष्य जागा हुआ होता तो ऐसी स्थिति नहीं आती।

दोस्तो! आज मनुष्य को जितना चाहिए उतना एकांत भी प्राप्त नहीं हो रहा है। मन को खाली होने के लिए इस दंभी समाज की गैरमौजूदगी चाहिए और इसके लिए एकांत चाहिए। एक बार मन खाली हो गया तो पागलपन स्वत: कम हो जाएगा। जब मन से थोड़े स्वस्थ हुए तो फिर अपनी सांसों को लय में लो। जैसे मन में आए उस आसन में गिर जाओ, सो जाओ, गहरी सांसें छोड़कर बिलकुल खाली हो जाओ। बचा कुचा तनाव भी सांस के द्वारा बाहर फेंक दो। ऐसा करने से आप एक प्रकार की अलौकिक शांति और मुक्ति का अनुभव करेंगे।

दोस्तों! अनुभव की उन गहराईयों में उतरते जाओ वही बन जाएगा ध्यानानन्द। अब फिर से सवाल मत उठाना कि कितने दिन तक करें।

आपका पूरा पागलपन जब तक खत्म न हो जाए तब तक माहौल को ढूंढो, मनोविरेचन करते रहो, और फिर ध्यान में जाकर धीरे धीरे स्वस्थ होते जाओ।





धारणा - 105

शांत भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 105

साधक जब एकांत को पाओ, तर्क वितर्क से मुक्त हो जाओ।
साक्षी भाव से शांत करो मन को, पल में पाओ पूर्ण ब्रह्म को।।

ध्यान विधि - 105

एकांत में साक्षी भाव को विकसित करके तर्कमुक्त स्थिति में पहुंचकर शांति का अनुभव करो और पूर्ण-ब्रह्म की अनुभूति कर लो ।



आत्म सूचन करते वक्त आप निद्रा में न चले जाओ या ध्यान विधि से ऊब भी न जाए इसलिए आपको सजग रहना है। आत्मसूचन स्टीरिओटाइप या मेकेनिकल वर्क की तरह नहीं होना चाहिए। आपका आत्मसूचन समग्रतापूर्ण होना चाहिए। वह सूचन प्राणों में से उठना चाहिए। गहन भावों का सहारा लो, संकल्प शक्ति का पूरा पूरा उपयोग करो और खुद को कहते रहो कि मैं शांत हूँ, मैं शांत हूँ.....।

प्यारे साधको!

मनुष्य का स्वभाव है कि वह बिना मांगे लोगों को सूचन देता रहता है। सूचन बड़ा सम्यक शब्द है। परंतु कुछ लोग सूचन और सलाह का भेद नहीं समझते हैं। कुछ लोग इतने असहाय होते हैं कि वे हमेशा दूसरों के सूचन चाहते रहते हैं और दूसरों की सलाह पर ही जीते हैं। एक अर्थ में ऐसी हरकतें आत्मविश्वास के अभाव में होती हैं। सतत दूसरों की सलाह मांगकर जीना और बिनामांगे सलाह देना, ये दोनों अज्ञान की अवस्था हैं। मनुष्य को अज्ञान में जीना अच्छा लगता है। अज्ञान से कभी अहंकार पुष्ट होता है तो कभी सलामति का अनुभव होता है। परंतु शांति का अनुभव नहीं होता है। मैं कहती हूँ कि अगर सजेशन्स देने ही हों तो स्वयं को दो।

आदमी अज्ञान के वश होकर दूसरों के विषय में धारणाएं बनाता रहता है। या दूसरों पर अपनी धारणाएं थोपता रहता है। यहाँ धारणा का अर्थ है मान्यता। मनुष्य मान्यताओं में जीता है। मन गढ़ंत कल्पनाओं में जीता है। ज्यादातर लोग किसीके बारे में कुछ भी मान लेते हैं अथवा

अपना मानना दूसरों पर थोपते रहते हैं। फिर उन पूर्ण धारणाओं के आधार पर एक आदमी दूसरे के साथ व्यवहार करता है। परिणाम रूप सत्य दब जाता है। पूर्वग्रह बढ़ते जाते हैं। इन पूर्वग्रहों का बढ़ना परस्पर होता है। क्यों? क्योंकि सत्य कुछ और ही होता है। मनुष्य में इतनी हिम्मत या समझ नहीं होती कि वह अच्छों के बारे में अच्छा अभिप्राय दे। समाज की रीति रिवाज, धर्म, पारिवारिक नियम ये सब मान्यताओं के आधार पर चल रहे हैं और मान्यताओं के अज्ञात पहिओं के रथ में सवार होने वाला पूरा समाज अशांत संतप्त, दुःखी, असंतुष्ट और झुंझलाया हुआ है।

क्या करें इस मनुष्य के लिए? ऐसे अशांत आत्मदृष्टि के अभाव में जीने वाले, मान्यताओं के गुलाम और मान्यताओं से घबराने वाले तथा पूर्वग्रहों से घिरे हुए होने के कारण तनावपूर्ण और अतृप्त लोगों के लिए मैं एक ध्यान विधि दे रही हूँ। वह है सेल्फसजेशन मैथड। उसे आप सेल्फकमांडिंग भी कह सकते हैं।

दूसरों को सूचना देना अब बहुत हो गया। दूसरों को सूचन देना और दूसरों की सलाह पर जीना अब बंद करो। कोई व्यक्ति आपसे निकट हो, आपका शुभचिंतक हो अथवा आपको समझ सकता हो या समानधर्मा हो उपरांत सजग हो तो उससे आपतकाल में कुछ सलाह मश्वरा भले कर लो परंतु ऐसा मत करना कि

इसकी सलाह ले कभी उसकी सलाह ले
कर ली है तूने अपनी जिंदगी तबाह ले।

आदमी का जीवन तबाह हो जाए तब तक उसकी खुद की सोच खुलती नहीं है। न खिलती है; यह कैसी करुणा?

प्यारे साधको!

मैं आपका सेल्फकमान्डिंग पावर डेवलप करना चाहती हूँ। कुछ पूछना है तो स्वयं की आत्मा को पूछो। कुछ जानना है तो स्वयं के भीतर के रहस्यों को जानो। दुनियादारी तो बहुत सीख ली परंतु आप उससे शांति या परमसुख को न पा सकें। अब कुछ सूचन करने हैं तो स्वयं को करो। दूसरों पर कट कट करके जिन्दगी गुजर गई। आखिर यह अधिकारभाव कब तक। अब बोसिज़्म छोड़ो। दूसरों पर मालिकी भाव जताने की आदत से जल्दी बाहर निकल आओ। अहंकार की आग चारों ओर लग रही है। अभी भी देर नहीं हुई। बचा लो अपने आप को। बहुत उपदेश दे लिया बच्चों को, छोटों को, पड़ोसियों को; अब आत्मउपदेश करने का समय आ गया है। दुनिया आपकी सलाह से ऊब रही है। लोग आपसे दूर चले जाएं अथवा आपको दूर कर दें, इसके पहले मौन, धैर्य, दृष्टाभाव जैसे गुणों को विकसित कर लो। और इन सबके लिए बड़े बड़े पंडालों में चलती हुई कथाएं या लाऊडस्पीकर की आवाज ज्यादा मदद नहीं करेंगी। न टी.वी. चेनल्स पर आते हुए असंख्य बाबाओं का उपदेश मदद करेगा। आपके लिए तो आपको स्वयं को जागना पड़ेगा, स्वयं को बदलना पड़ेगा। आप स्वयं को बदल सकते हो। जितना लगता है उतना कठिन नहीं है यह कार्य। आपको एक छोटा सा फेरफार करना है आपकी जीवन शैली में। आदत भले यही रहे, केवल रवैया बदलना है। भले बोलते रहो परंतु दिशा बदलनी है। पहले दूसरों को कुछ न कुछ कहा करते थे। रोक-टोक किया करते थे। फालतू प्रश्न किया करते थे। अब केवल एक छोटा सा टर्न लेना है। परंतु यह टर्न "यू टर्न" होगा। दिशा बदल जाएगी। तब सजगता के साथ केवल स्वयं को कुछ कहते रहना है। ऐसा होने से आप अपमानित

होने से बचेंगे। किसी में अप्रिय नहीं होंगे। न मूर्ख साबित होंगे। लोग आपका आदर करेंगे। आपसे भागेंगे नहीं। न आपकी उपेक्षा होगी और न ही आपकी कोई खिल्ली उड़ाएगा।

दोस्तो, इस यू-टर्न में आपको क्या करना है? ज़रा ध्यान से समझ लीजिए। यह एक ध्यान विधि है। ऐसा नहीं मान लेना कि कोई शास्त्र कहे वही ध्यान विधि। प्रत्येक शास्त्र किसी न किसी महापुरुष के अनुभव में से उतरा है।

प्यारे साधको!

ध्यान तो ध्यान है। ध्यान विधि में नूतन विधि या पुरानी विधि ऐसा भेद नहीं होता। एक ही उद्देश्य होता है। ज्ञान में प्रवेश और अज्ञान का, भ्रम का और मोह का निरसन। खैर! अब विधि की ओर ध्यान दीजिए।

अगर आपको लगता है कि आप अशांत हैं। लोगों से असंतुष्ट हैं। उपेक्षित हैं, आपका चित्त तनावग्रस्त है, दिल बेचैन है तो रोज का एक क्रम बनाइए। पूरे दिन में से किभी भी तीस मिनिट का समय निकाल लीजिए और एक शुद्ध आसन पर सुखमय स्थिति में बैठ कर श्वास को शांत हो जाने के बाद खुद को अर्थात अपनी चेतना को, स्वभाव को, स्वरूप को... उसे कुछ भी नाम दो। उसे आज्ञा देना शुरु करो कि मैं शांत हूँ, मैं शांत हूँ, मैं शांत हूँ। असंख्य बार एक ही आत्मसूचन का पुनरावर्तन करो। आरंभ में तो आधा घंटा भी बहुत लंबा लगेगा। क्योंकि आदमी को मौन, एकांत और स्वसूचन की आदत नहीं है। खुद के बारे में वे गांधी के बंदर हो जाते हैं। दूसरों के बारे में बहुत कुछ जानने, सुनने और बोलने में उत्सुक होते हैं। खैर!

पहले पांच मिनिट से आरंभ करना। पांच मिनिट में कम से कम तीन सौ बार आत्मसूचन करो। ये इसलिए करना है कि आपके मन को कुछ और सोचने का बोलने का या अन्य विषय में प्रवृत्त होने का मौका न मिले। पांच मिनिट में तीन सौ बार आत्म सूचन – मैं शांत हूं, मैं शांत हूँ.....। प्रत्येक सेकन्ड में अपने मूल रूप का स्मरण दिलाओ, आत्मस्वरूप का स्मरण दिलाओ। मन को बहुत लंबे अरसे से अशांति का अभ्यास हो गया है। इसलिए मन जल्दी शांति में सहयोग नहीं करेगा। परंतु धीरे धीरे वह आपकी लय में जुड़ जाएगा। मन का स्वभाव है – उसे एक ही विषय में प्रवृत्त कर दो तो वह बहुत जल्दी थक जाता है और आपको मूर्छा में ले जाने के लिए उत्सुक होता है। मन के पास केवल चंचलता है। विशेष समझ नहीं है। उसकी सारी योजनाएं क्षणिक होती हैं। परंतु अगर आप सजग नहीं हैं तो आत्मसूचन से ऊबा हुआ मन आपको निद्रा में ले जाएगा। आप पांच मिनिट में ही उनिंदा महसूस करने लगेंगे, उबासिया लेने लगेंगे, संभव है कि सो भी जाएं। जप, माला, ध्यान आदि में बैठने वाले ज्यादातर लोग बीच बीच में झपकी मार लेते हैं। क्यों! क्योंकि वे इबादत को आदत बनाना चाहते हैं।

दोस्तो, ऐसा हरगिज़ नहीं करना। ऐसा हो भी नहीं सकता। आदत मन की और शरीर की होती है। शुद्ध चेतना को कोई आदत नहीं होती, कोई लत नहीं होती। वह तो पूर्ण बंधन मुक्त है। वह केवल है, सर्वसाक्षी है, उसकी मौजूदगी मात्र है, परंतु आप पर चढ़े हुए आवरणों को दूर करने के लिए यह एक विधि मात्र है। चेतना तो सदा महासमाधि में ही है। ध्यान के द्वारा मैं आपको उसका अनुभव कराना चाहती हूँ। मन उसकी शांतिपूर्ण समाधि का बार बार भंग करता है इसलिए मन को लगा देना है

एक विधि में। मन पांच मिनिट में ही थक जाएगा, ऊब जाएगा। ऐसी स्थिति में आप नींद में जा सकते हो अथवा ध्यान में से उठ सकते हो। क्योंकि जिन्दगीभर दूसरों को ही सूचन दिए हैं तो स्वयं को बार बार सूचन देना अजीब सा लगता है। फिर भी अगर आपको आप अपनी वास्तविक शांति का अनुभव करना चाहते हैं तो आत्मसूचन की पद्धति अनिवार्य है।

आदमी अशांति से पागल हो जाता है। फिर खर्चा करके मनोचिकित्सकों के पास अथवा हिप्नोटाइज़र के पास जाता है। वे लोग उसे हिप्नोटिज़्म के द्वारा हजारों बार सूचन देकर दुनियां की नज़रों में फिर से ठीक जैसा कर देते हैं। वहाँ बार बार वही आदेश मिलता है कि आप स्वस्थ हो, आप स्वस्थ हो। क्या आपको नहीं लगता है कि ऐसा हो उससे पहले आप आत्मसूचन पद्धति से स्वयं को शांत और स्वस्थ अवस्था में ले आओ और शांति का अनुभव कर लो!

प्यारे साधको!

आत्म सूचन करते वक्त आप निद्रा में न चले जाओ या ध्यान विधि से ऊब भी न जाए इसलिए आपको सजग रहना है। आत्मसूचन स्टीरिओटाइप या मेकेनिकल वर्क की तरह नहीं होना चाहिए। आपका आत्मसूचन समग्रतापूर्ण होना चाहिए। वह सूचन प्राणों में से उठना चाहिए। गहन भावों का सहारा लो, संकल्प शक्ति का पूरा पूरा उपयोग करो और खुद को कहते रहो कि मैं शांत हूँ, मैं शांत हूँ.....।

स्वयं को आदेश देने में जब सजगता और समग्रता आएगी तब निद्रा और आलस्य अदृश्य हो जाएंगे। फिर ऐसा आदेश देना आपको एक निरर्थक प्रवृति या उबाउ पुनरावर्तन नहीं परंतु एक दिव्य साधना लगेगी। अचानक एक अपूर्व घटना घटेगी। आपके भीतर कुछ बदलने लगेगा।

कुछ सुंदर पनपने लगेगा, असुंदर विदा लेने लगेगा, आप खिलते जाएंगे, आप वास्तव में महसूस करेंके कि आप ध्यानी हैं योगी हैं। क्योंकि रूपांतरण का प्रारंभिक अनुभव हौसला बढ़ाता है। जब एक ही आदेश भीतर लाखों बार मिलेंगे तब पुरानी आदतें और निरर्थक परतें जो आपके और आपके बीच में खलनायिका बनकर बैठी थी, वे सब अदृश्य हो जाएंगी। आप नूतन ऊर्जा और नवीनता का अनुभव करेंगे। फिर तो यह क्रिया अजपाजाप की भांति शुरु हो जाएगी। फिर आदेश देने की भी जरूरत नहीं रहेगी। भीतर से सूचन स्वयं ध्वनित होता रहेगा कि मैं शांत हूँ, मैं शांत हूँ, ...।

इस विधि के तीसरे तबक्के में सारे शब्द शांत हो जाएंगे; बची रहेगी केवल शांति, शांति की अनुभूति, शांति का आनंद, शांति की मौजूदगी। आप अहसास करेंगे कि तीन महीने की साधना ने तो तीन सो जन्म सुधार दिए। जो प्रत्येक मनुष्य की आत्यंतिक खोज है।

तो दोस्तो, अब करो आरंभ और शांति को आपका अनुभवित सत्य बना लो।





धारणा - 106

गहन मौन ध्यान

ध्यान सूक्ति - 106

शांत निरव अति मौन स्थिति में, सहज शुद्ध मन हो विरति में।
ते क्षण परम समाधि भाई, शिव वशिष्ठ पतंजलि गाई।।

ध्यान विधि - 106

गहन मौन में उतरकर आत्मस्वरूप का बोध कर लो ।



गहना

मौन के द्वारा ध्यान में प्रवेश करना अनुपाय विधि के अंतर्गत आता है। जिसमें कुछ नहीं करना है। कोई उपाय, कोई आधार, कोई माध्याम नहीं। किसी भी माध्याम के बिना पहुंच जाओ ध्यानस्थ अवस्था में। अगर आप गहन मौन में उतर सकते हो तो वह एक बहुत प्यारी अवस्था है।

प्यारे साधको!

ध्यान के लिए जरूरी नहीं कि आप किसी क्रिया विशेष में से गुजरो। परंतु जरूरी यह है कि आपका पूर्णत: अक्रिया में प्रवेश हो। आप शब्द जगत, क्रिया जगत और मनोजगत के पार चले जाओ।

ध्यान शास्त्र में ध्यान के लिए चार उपाय बताए गए हैं। जिनमें शाक्त परंपरा की धारणाओं को शाक्तोपाय, शैव परंपरागत धारणाओं को शांभव उपाय, इन्द्रियों का आधार लेकर ध्यान में प्रवेश करने की विधियों को आणव उपाय तथा किसी भी प्रकार के आधार के बिना ध्यानस्थ होने की विधियों को अनुपाय विधान कहा है।

गहन मौन के द्वारा ध्यान में प्रवेश करना अनुपाय विधि के अंतर्गत आता है। जिसमें कुछ नहीं करना है। कोई उपाय, कोई आधार, कोई माध्याम नहीं। किसी भी माध्याम के बिना पहुंच जाओ ध्यानस्थ अवस्था में। अगर आप गहन मौन में उतर सकते हो तो वह एक बहुत प्यारी अवस्था है।

मैंने देखा है कि लोग मौन रखते हैं। मौन हो नहीं सकते। मौन रखना यह एक प्रयास है, दमन है; वहाँ चुप रहने के लिए थोपी हुई सजगता है। सहज सजगता नहीं। मुंह से शब्द न निकल जाए इसलिए मौन रखने वाले लोगों को खुद के चौकीदार बन जाना पड़ता है। चिंतित रहना पड़ता है। बहुत आयास प्रयास करना पड़ता है। कुछ लोग वाणी से मौन रहते हैं परतुं अपना व्यवहार चलाने के लिए कागज़ कलम के द्वारा बोलते रहते हैं। मैं शायद बीस साल की थी तब मेरे जूनागढ के आश्रम में गुजरात के संपूर्णानंदजी नाम के एक संत पधारे। वे मुझसे बहुत सारी बातें करना चाहते थे। उनके साथ एक दो भक्त थे। बाबा बार बार पाटी में कुछ लिखकर बताते रहते थे, भक्त पढ़ते थे। काफी बातों के लिए वे इशारे भी करते थे, मुझे समझने का तो सवाल ही नहीं उठता था परंतु जब उनके भक्त इशारों से बात को समझ नहीं पाते थे तब उनके चहरे की रेखा तंग हो जाती थीं। बाबा बाहर से थोड़े क्रोधी नजर आने लगते थे, भीतर से कितने क्रोधित हुए होंगे पता नहीं। मुझे यह सब देखकर हंसी आती थी परंतु जबरदस्ती हंसी रोकनी भी पड़ती थी। क्योंकि मेरा भी बड़ा नाम था। और जिन जिन का नाम बड़ा हो जाता है उन्हें अपनी सहजता को ढांकना पड़ता है। बड़प्पन निर्दोष बचपन की बलि मांगता है। यह कैसी धार्मिक-सामाजिक करुणा? कैसा ढोंगपूर्ण शिष्टाचार? हमारा समाज जब तक दंभ को धर्म मानता रहेगा तब तक धार्मिक समाज में निखालसता और सहजता का दर्शन नहीं होगा। परंतु धर्म के नाम पर एक दांभिक परंपरा ही आगे पढ़ेगी।

वास्तव में धर्म मनुष्य को सरल बनाता है। अपनी स्वाभाविकता में पुन: प्रतिष्ठित करता है। सच्चा धार्मिक मनुष्य बच्चे जैसा निखालस

होता है। वह कुछ भी दिखाने का प्रयास नहीं करता। वह जैसा होता है वैसा ही दिखता है और अपनी वास्तविकता में जीता है।

मैं कहना यह चाहती हूँ कि इस स्थूल मौन का कोई अर्थ नहीं। अथवा केवल वाणी का मौन, वाणी को संयमित करने का अभ्यास है। ऐसा अभ्यास मौन का एक हिस्सा बन सकता है परंतु संपूर्ण मौन नहीं। संपूर्ण मौन तो यह है कि जहाँ मन, मति, अहंकार और वाणी सहज ही शांत हो जाएं। मैंने देखा है कि वाणी तो एक उपकरण मात्र है। उसके जरिए ज्यादातर तो मनुष्य का अहंकार बोलता है, उसकी वासनाएं बोलती हैं, उसकी अज्ञानता बोलती हैं, उसका क्रोध बोलता है, उसका लोभ बोलता है, उसकी आदतें बोलती हैं, उसका राग–द्वेष बोलता है।

ज्यादातर लोगों के बोलने में सजगता का अभाव होता है और ज्यादातर मौन रखनेवालों का मन बक–बक करता रहता है। ऐसे लोगों के चहरे पर मौन के कारण तनाव नज़र आता है। मौन अगर वास्तविक और एक पूर्ण मौन हो तो मौनी के चहरे पर प्रसन्नता दिखाई देती है। परंतु यह तभी संभव होता है कि जब मन की मांगें समाप्त हो रही हों। दोस्तो! वाणी मनोजगत को अभिव्यक्त करती रहती है। मन जितना शांत उतने शब्द कम। मन जितना चंचल इतने शब्द ज्यादे।

दोस्तो! अगर आप गहन मौन को उपलब्ध हो गए तो वही ध्यान है। क्योंकि ध्यान है गहन मौन और गहन मौन है परम ध्यान।

मौन शब्द अपने में बड़ा विषद अर्थ को समाए हुए है।

प्यारे साधको!

आंतरिक रूपांतरण की घटना गहन मौन की स्थिति में शीघ्रता से घटती है। जबतक मन बोलता रहता है तब तक वह आपकी ऊर्जा को

खाता भी रहता है और कुंठत भी करता रहता है। क्योंकि मन का स्वभाव है कि वह सुखद घटनाओं को जल्दी भूल जाता है। और दु:खद घटनाओ तथा चिंताओं का बार बार चिन्तन करता रहता है। जिससे मनुष्य ज्यादा विचलित, भयभीत, बीमार और चिंतित रहता है। दुर्घटनाओं की बातों को दोहराते रहना मन का स्वाभाव है। वह मित्र से ज्यादा स्मरण शत्रु का करता है। जिसे बिसारना है उसे बार बार याद करता है। दुर्घटनाओं की कल्पना करते रहना मन का स्वभाव है। ऐसी दुष्कल्पनाएं मनुष्य को खोखला कर देती हैं।

मैं कहती हूँ कि आप वास्तविक रूपांतरण चाहते हो, आप वास्तव में स्वयं को बदलना चाहते हो तो गहन मौन में उतरना सीखो। आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि हम मौन तो रह सकते हैं परंतु गहन मौन नहीं उतरता है। वाणी को तो जबरदस्ती चुप कर देते हैं परंतु मन को वश नहीं कर सकते। वह तो बकता ही चला जाता है; एक पागल की भांति।

दोस्तो! मन को वश करने के लिए योग मार्ग एक लंबा विधान बताता है परंतु संभव है कि पूरी जिंदगी कम पड़ जाए। क्योंकि योग के अंगों में से गुजरना लंबा समय मांग लेता है। मैं कहती हूँ कि तंत्र की अनुपाय विधि के द्वारा आप मन से मुक्ति पा सकते हो। अब ध्यान दीजिए। कैसे उतरेंगे इस विधि में।

दोस्तो! आपको मन के विपक्ष में नहीं जाना है। मन से लड़ना नहीं है। क्योंकि मन आपसे बहुत पुराना, सूक्ष्म, फिर भी बड़ा है। आप अगर मन से लड़ने बैठेंगे तो लड़ने में ही आपकी सारी ऊर्जा खत्म हो जाएगी। तो शांति कब लेंगे। इसलिए मैं कहती हूँ कि न मन के पक्ष में रहना है, न विपक्ष में। आपको एक दृढ़ धारणा बनानी है कि मैं न मन हूँ,

न विचार हूँ, न वाणी हूँ, न क्रिया। भीतर जो कुछ भी सोच चल रही है, वह है एक पुरानी आदत का परिणाम। मैं तो सबका साक्षी हूँ। दोस्तो! ऐसा संकल्प करके बैठो एकांत में। आपको काष्ट मौन में नहीं उतरना है। लकड़ी की तरह सूखकर टूटने के लिए आपकी साधना नहीं है। आपका मौन पुष्पों की भांति मुस्कुराता हुआ सुवासित तथा भीना भीना होना चाहिए। मौन से भार नहीं परंतु आनंद का अनुभव होना चाहिए।

आप जब मौन में बैठो तब वाणी तो बेचारी स्थूल है उसका क्या? उसे दबाया जा सकता है। वह तो तुरंत चुप हो जाएगी। परंतु व्यवधान खड़े करेगा मन। आप अगर मौन को ध्यान की अवस्था तक ले जाना चाहते हो तो मन की सारी हरकतों को साक्षी भाव से देखते जाओ। जैसे एक पागल को देख रहे हो। पागल की हरकतों का कोई मूल्य नहीं होता। वैसे ही मन की ज्यादातर हरकतें निरर्थक होती हैं। आप जब मन की ओर लक्ष्य देना बंद कर देंगे तो मन को ऊर्जा नहीं मिलेगी। याद रहे! आपका मन के प्रति लक्ष्य देना ही मन का भोजन बन जाता है। मन के प्रति जितना ध्यान दोगे, उतना ही वह ज्यादा हावी होता जाएगा। जितना दुर्लक्ष्य रखोगे उतना वह क्षीण होता जाएगा।

एक बात याद रहे! जो जो मन के साथ बहते रहे वे सभी मनुष्य बनकर रह गए। जिन लोगों ने मन के पार जाने की कला हासिल कर ली, ऐसे लोग ऋषि, मुनि, संत, और भगवान बन गए। क्योंकि वे लोग मन की सभी कमज़ोरियों से पार जा पाए। ऐसे लोग मानव में से महामानव बन गए। उनकी साधना ने उन्हें असाधारण बना दिया।

प्यारे साधको!

मौन में बड़ी संभावनाएं पड़ी हैं। अगर आपका मौन गहन मौन बन गया। आपका मन के साथ बहना बंद हो गया और आप स्व में स्थिर होने लगे तो कई चमत्कार घट सकते हैं।

मैंने देखा है कि विश्व की अनेक रहस्यमय, अद्भुत, सुंदर और चमत्कारिक घटनाएं मौन में घटती हैं। सुबह में सूरज चुपपाच उदित होकर दुनिया को उजाले से भर देता है और शाम को बिना कोई हंगामा मचाए विदा ले लेता है। एक कलि चुपचाप फूल बन जाती है, बीज चुपचाप अंकुरित होकर देखते ही देखते पौधे में से पेड़ बन जाता है। संध्या और ऊषा के रंग चुपके से बदलते रहते हैं। कुदरत मौन रहकर फल में मिठास और फूलों में रस-रंग भरता रहता है। एक बच्चा गर्भ में आकार ले लेता है। प्रेम की घटना भी चुपचाप घट जाती है। उसके प्रस्ताव और अभिव्यक्तियाँ तो बाद में घटती हुई स्थूल घटना हैं।

मैं कहूंगी कि मौन ईश्वर का वास्तविक स्वभाव है। भगवान कभी हंगामा खड़ा नहीं करते। आदमी शोर-गुल करता रहता है। दोस्तो! मौन के कारण ही शब्दों का मूल्य है। जो मनुष्य मौन रहना नहीं जानता उसके शब्दों में लोगों को खास रस नहीं रहता। ऐसे लोगों की वाणी को झेलना पड़ता है। परंतु अफसोस! बकवास पूरे मनुष्य समाज की एक कमजोरी है। जहाँ सारा समाज एक पागलपन में से गुजर रहा हो, वहाँ कौन समझे मौन की महिमा और भाषा को! परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि आप पागलों की भीड़ में मिल जाओ।

मैं कहती हूँ कि सजग रहो। मौन को अभ्यास बनाओ तनाव या दबाव नहीं। मौन आपका मूल स्वभाव है। आपके भीतर परमात्मा चुपचाप

रहकर शांति से शरीर के सभी तंत्रों को चला रहे हैं। उस परमात्मा को समझो, जानो। हमारे घरों में दस रोटी पकाने में नारियाँ घर सर पे उठा लेती हैं। और परमात्मा केवल दो रोटी में से रक्त बनाकर हमें प्रतिपल जीवन देता रहता है परंतु गहन मौन की अवस्था में साक्षी रहकर, ध्यानस्थ रहकर, अदृश्य रहकर।

दोस्तो! शायद अब आप समझ पाए होंगे कि गहन मौन ही ध्यान है। कम से कम रोज एक घंटा बैठो मौन में। विधि में उतरना आरंभ करो। फालतू बातों से बचकर साधना के लिए समय निकाल लो। शुरुआत में मन, मति और अहंकार विक्षेप खड़े करते रहेंगे परंतु मौन में बन जाओ परमात्मा। परमात्मा मनुष्य की कमजोरियों को नजरअंदाज करके अपना कार्य करते रहते हैं। वैसे ही आप मन की, विचारों की और वासना की कमजोरियों के प्रति ज्यादा लक्ष्य नहीं देना। अपना लक्ष्य रखो सत्य के प्रति। सत्य वह है जो आपका मूल स्वरूप है। धीरे धीरे उसका बोध होने लगेगा। यह बोध ही सत्य का साक्षात्कार है। इस क्षण में ही आनंद और शांति बरसने लगती है। इन्ही क्षणों में मन द्वारा दिए हुए कई निरर्थक बंधन स्वत: गिर जाएगे और आप परम स्वतंत्रता, शांति और मुक्ति का अनुभव करेंगे।





धारणा - 107

विस्मय भाव प्रवेश ध्यान

ध्यान सूक्ति - 107

अति रहस्यमयी कोउ घटना से, अथवा कोउ जादू टोना से।
मन आश्चर्य चकित जब भयहुं, निर्विकल्प प्रकाश तब प्रगटहुं।।

ध्यान विधि - 107

किसी भी विस्मय कारकर घटना से चित्त की निर्विकल्प अवस्था का निर्माण हो तब स्वप्रकाश को प्राप्त कर लो ।



ध्यान कोई भारी भरकम चीज़ नहीं है। न कोई कठिन पद्धति है। जिस बात को आप अच्छी तरह से समझ लो। छोटी छोटी विधियों का आधार लेकर आप ध्यानस्थ हो सकते हो। आपको केवल इस कला को जानना है, पहचानना है और बाहरी स्तर पर घटती हुई घटनाओं का ध्यान में उपयोग करना है।

प्यारे साधको!

तंत्र शास्त्र में कुछ विधियाँ अतिसरल फिर भी असरकारक हैं। उन विधियों में किसी विशेष भाव में अचानक स्थिर हो जाने का विधान है। अगर आप चाहें तो सजगता के साथ कुछ ऐसी घटनाएं जो आपके मन को क्षणभर के लिए स्थिर कर देती हैं वहाँ ज्यादा समय के लिए स्थिर होकर आप निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। विधि कहती है कि कोई ऐसी घटे जो अति रहस्यमयी है, तो उसमें स्थिर होकर निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त कर लो।

प्यारे साधको!

अति रहस्यमयी किसे कहेंगे? जिसे मन और बुद्धि न समझ पाए व अतिरहस्यमयी है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह सभी बातों को बुद्धि से समझने का प्रयास करता है। परंतु कुछ बातें बौद्धिक क्षेत्र के बाहर की घटती हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य क्या करता है?

मनुष्यों में भी हजार हजार प्रकार की प्रकृति के लोग हैं। ईश्वर ने प्रत्येक को खास बनाया है। यहाँ हर पिल्ला और गधा भी खास हैं।

क्योंकि प्रत्येक में अस्तित्व ने कुछ न कुछ फेर-फार कर दिया है। वह कैसे होता है? ये नहीं कह सकते और उस विषय में पड़ना भी नहीं है। वैज्ञानिकों के पास इस विषय में बहुत सारे प्रमाण और लंबी चौड़ी दलीलें हैं। फिर भी विविधता का राज़ राज़ ही रहा है। यह सब कैसे होता है? उसका जवाब विज्ञान दे सकता है परंतु क्यों होता है इस बात का जवाब आज तक किसी के भी पास नहीं है। अगर जवाब है भी तो वह जवाब अधूरा होगा। एक उत्तर कई प्रश्नों से भरा हुआ होगा। इसे ही कुदरत का राज़ कहते हैं। यही वजह है कि ज्ञानी, ध्यानी, विज्ञानी, योगी, भक्त, आस्तिक, नास्तिक सब कुदरत में जरूर मानते हैं।

खैर! मैं बात यह कह रही थी कि वैसे तो प्रत्येक जीव अनूठा है और विश्व में असंख्य लोग भिन्न भिन्न प्रकृति के हैं, फिर भी बुद्धि के पार की जहाँ बात आती है वहाँ सिर्फ दो प्रकार के लोग रह जाते हैं - एक प्रमाणिक और दूसरे अप्रमाणिक।

प्रमाणिक मनुष्य कितना भी बुद्धिजीवी हो परंतु जब कोई ऐसी रहस्यमयी घटना घटे जो उसके समझ के बाहर की हो तो वह स्वीकार कर लेता है कि मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। वह अपने झूठे अहंकार को पकड़े नहीं रखता। सत्य का स्वीकार करने में अथवा अपनी बुद्धि की सीमाओं का स्वीकार करने में वह छोटापन महसूस नहीं करता। ऐसे लोग वास्तव में अच्छे हैं। अच्छे इसलिए हैं कि वे प्रमाणिक रहकर अपना हित कर सकते हैं। ऐसे लोग बुद्धि के आगे का जो विश्व है उसमें प्रवेश करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। अथवा रहस्य में डूबकर कुछ नूतन की प्राप्ति कर सकते हैं।

दूसरे प्रकार के लोग हैं, अप्रमाणिक। कुछ बातें उन लोगों की

बुद्धि की सीमाओं के पार की होने पर भी वे स्वीकार नहीं कर सकते हैं। कि वे राज़ को समझ नहीं पाते हैं। उन्हें सबकुछ समझ में आ जाता है। ऐसे लोगों के साथ काम करना कठिन हो जाता है। ऐसे लोगों को उनकी मति कुछ बातें नहीं समझ सकती है, ऐसा सत्य गंवारा ही नहीं होता। वे अज्ञान में जीते हैं। वे अखंड अज्ञान में खुश रहते हैं। ऐसे लोग किसी भी हालात में सत्य का स्वीकार नहीं करते। समझदार आदमी को ऐसे लोगों से दूर रहना चाहिए। ऐसे लोग किसीके नहीं होते हैं। वे दंभी किस्म के लोग हैं। वे ध्यान के लिए तो बिलकुल नहीं हैं और अगर ध्यान में बैठते भी हैं तो वह उसका ध्यान नहीं होता मात्र ध्यान का ढोंग होता है।

सरल चित्तवान का हृदय बच्चे जैसा होता है। बच्चे का मन जल्दी विस्मय से भर जाता है। ऐसे ही अगर आपका मन किसी भी रहस्यमयी घटना से अथवा जादूई घटनाओं से अथवा किसी भी विशेष अथवा विशिष्ट बात से आश्चर्यचकित हो जाए तो उस आश्चर्य के क्षण में चकित हो गया हुआ मन क्षणभर के लिए रुक जाता है। उसके संकल्प विकल्प की प्रक्रिया अचानक कुछ क्षणों के लिए स्थगित हो जाती है। ऐसे कोई भी क्षण यदि आपको मिले तो मन को उन आश्चर्य के क्षणों में डूबा रहने दो। उन क्षणों में स्थिर होने लगो। सारी चेतना को लगा दो उस निर्विचार स्थिति को टिकाए रखने में। वे क्षण जितनी लंबी होंगी, उतनी ही शांति का अनुभव होगा। यथासंभव उस शांति में डूबते रहो। उस शांति का अनुभव करो। आश्चार्य रूप बन जाओ।

आपको पता है? लोग जादूगर का खेल देखने के लिए ब्लेक का टिकट लेकर भी क्यों जाते हैं? स्टंट सीन्स वाली फिल्में थियेटरों में ज्यादा क्यों चलती हैं? जेकी चान और जेम्सबॉन्ड की फिल्मों को लोग

क्यों ज्यादा पसंद करते हैं? सस्पेन्स फिल्मों को देखने का आग्रह क्यों रखते हैं? अथवा डिटेक्टिव सीरियल्स हैरी पॉटर की फिल्में, या केबीसी, या रैप सोन्स, या ब्रीथलेस सोंग्स जैसे कार्यक्रमों में क्यों अधिक रस लेते हैं? इन सबका एक ही कारण है – हैरत। हैरत भरे खेल, दृश्य, गीत या नृत्य कुछ भी हो परंतु उन क्षणों में मनुष्य का मन विस्मित होकर क्षणभर के लिए शांत हो जाता है। वह ध्यान की अवस्था है। लोगों को इस सत्य का बोध भले न हो परंतु अबोध अवस्था में भी वे क्षणिक ध्यान की अनुभूति में से गुज़रते हैं। पुराने जमाने के नटों का दोरी पर चलना, बाम्बू के ऊपरी छोर पर बच्चे को टिकाकर नीचे के छोर को मुंह के बल बाम्बू को ऊंचा करना; मदारियों का सांप और बिच्छु जैसे जहरीले जानवरों से खेलना, तथा सरकस के कुछ आश्चर्यकारक प्रयोग मन को हैरत से भर देने वाले ही प्रयोग हैं।

आज विज्ञान और टेक्नोलोजी के विकास के कारण केमरों की कारामत से कुछ पुरानी बातें आज नया लिबास पहनकर फिल्मों के रूप में हमारे सामने आई हैं। उनमें से कई चित्र मनुष्य के मन को निर्विचार कर देने वाले होते हैं। क्योंकि मन और बुद्धि कुछ समझ पाए इसके पहले तो खेल खत्म हो जाता है। तब आश्चर्य के साथ प्रसन्नता का भी अनुभव होता है। और उसी प्रसन्नता तथा हैरतभरे प्रयोग देखकर बार बार निर्विचार होने के लिए ही लोग ऐसे कार्यक्रम देखने के लिए आकृष्ट होते हैं। देखने के बाद कहते हैं कि मज़ा आ गया! ब्रेन फ्रेश हो गया। इसका क्या कारण है?

आप जब निर्विचार स्थिति में होते हो अथवा आप किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत चिंता या सामाजिक चिंता से छुटकारा पाकर मनोरंजन

कार्यक्रम में बैठते हो तब मस्तिष्क के द्वारा खर्च होने वाली ऊर्जा बचती है। तीन घंटे के आनंद, हास्य और हैरत के दृश्यों से मन प्रफुल्लित होता है। रक्त अभिसर तंत्र सतेज होता है। और अंतःस्त्रावी ग्रंथियाँ हकारात्मक रूप से उत्तेजित होती हैं। उपरांत आपको अपना एकांत आनन्द और स्वतंत्रता का अनुभव होता है। जिसकी वजह से अन्य कार्य आप विशेष फुर्ती और उत्साह से कर सकते हैं।

प्यारे साधको!

ये सबकुछ कहने के पीछे मेरा एक ही उद्देश्य है, कि ध्यान कोई भारी भरकम चीज़ नहीं है। न कोई कठिन पद्धति है। जिस बात को आप अच्छी तरह से समझ लो। छोटी छोटी विधियों का आधार लेकर आप ध्यानस्थ हो सकते हो। आपको केवल उस कला को जानना है, पहचानना है और बाहरी स्तर पर घटती हुई घटनाओं का ध्यान में उपयोग करना है।

किसी रहस्यमयी घटना से या कूहन प्रयोग (जादू से) अथवा आपके मन को क्षणभर के लिए रोक दें ऐसी किसी भी आश्चर्य कारक घटना जिसमें आप रोमांचित हो जाओ आपका रोम रोम खिल उठे, पुल्कित हो जाए, ऐसी क्षण में प्रवेश करना सीख लो। याद रहे, घटना से तदात्म्य मत होने देना। केवल रोमांचित दशा में डूबे रहने का प्रयास करना। अतीत और भविष्य में मत जाना। रोमांच की क्षणों में स्थिर होना सीख लो। बार बार उसी क्षण का स्मरण करो। चित्त को कहीं भी न जाने दो। मन को नया विषय मत दो। आप अचानक अनुभव करेंगे कि आश्चर्यचकित मन जब ठहर गया है तब निर्विकल्पावस्था का उदय हुआ है। और उस क्षण में आप परम प्रकाश की अनुभूति करोगे। वही

ध्यान बन जाएगा। वही ध्यान की सफलता बन जाएगा।

प्यारे साधको!

यह प्रयोग तब तक करते रहो जब तक आश्चर्य की क्षण ध्यानावस्था न बन जाए।





धारणा - 108

भय रोमांच दशा प्रवेश भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 108

कूप तलाब गड्ढासन रूको, तहां झुकी स्थिर दृष्टि करी देखो।
भय से चित्त निर्विकल्प जब भासे, तामे प्रवेशी शिव रूप उपासे।।

ध्यान विधि - 108

भयभीत मनोदशा में चित्त को निर्विकल्प पाकर त्रस अवस्था में प्रवेश करो और शिवत्व का बोध कर लो ।



जिस क्षण आप किसी विशेष स्थान पर या विशेष परिस्थिति में भयभीत हो जाए तब उस क्षण निर्विकल्पावस्था का उपयोग कर लो। उस क्षण में प्रविष्ट हो जाओ। क्योंकि भयभीत स्थिति में मन कुछ भी सोच नहीं पाता। वह क्षणभर के लिए पंगु हो जाता है। रुक जाता है। बुद्धि कुंठित होकर निर्विचार हो जाती है। आपको इस निर्विचार अवस्था का आपकी आध्यात्मिक सजगता के लिए लाभ उठाना है।

प्यारे साधको!

विज्ञान भैरव तंत्र में एक विशिष्ट ध्यान विधि दी गई है। आपको उसका नाम याद रखने में सरलता हो इसलिए मैंने उसे नाम दिया है – भय रोमांच दशा प्रवेश भाव ध्यान। नाम ज़रा लंबा है परंतु इससे छोटा नहीं है सकता। इस विधि के पहले हमने कुछ अद्‌भुत घटनाओं के कारण मनुष्य को विस्मय और रोमांच होता है, इस विषय में चर्चा की। यहाँ भी बात तो विस्मय और रोमांच की ही है। परंतु अगली विधि के केन्द्र में जादू आदि मनोरंजन प्रयोगो से ही मन के पार जाने की बात थी। यहाँ भय के कारण जो रोमांच होता है उस रोमांच दशा में प्रवेश करके ध्यानस्थ होने की बात है।

प्यारे साधको!

इन छोटी छोटी विधियों से जो परिचित नहीं है उनको लगता है कि ऐसी विधियों से क्या ध्यान लग सकता है? परंतु यह एक सत्य है। मैं आपका हौसला बढ़ाने के लिए तथा आपको सत्य से अवगत कराने के लिए बार बार कहती हूँ कि ध्यान कोई भारी भरखम चीज़ नहीं है।

वह कोई कठिन कार्य नहीं है। मैं तो कहूंगी कि अगर आपने ध्यान में प्रवेश करने की कला एकबार हस्तगत कर ली तो फिर कोई भी विद्या कठिन नहीं परंतु रसप्रद लगेगी।

एक दूसरी बात भी याद रहे कि विधि छोटी हो या लंबी, सरल हो या कठिन परंतु केन्द्र में तो ध्यान ही है। आपको तो केवल निर्विचार होने की कला हांसिल करनी है। अनेक विधियों में से एकाध में तो आपका मन अवश्य स्थिर होगा। ऐसे पक्के भरोसे के साथ मैं ये सारी विधियाँ बता रही हूँ।

प्यारे साधको!

जब भय रोमांच प्रवेश भाव ध्यान की ओर हम जा रहे हैं तो पहले भय के प्रकारों को समझ लीजिए।

दोस्तो, मनुष्य भयभीत कब होता है? भय का पहला कारण तो है जन्मजात संस्कार है। मनुष्य को कुछ बातें जन्म से रक्त में ही मिली हैं। उसमें से एक है भय। जिसे हम जन्मजात भय कहेंगे। जैसे कि मृत्यु का भय, वृद्धत्व का भय, बीमारी का भय, कुछ छिन जाने का भय, अकेलेपन का भय इत्यादि। यह स्वभाविक भय है, प्रकृतिगत भय है।

दूसरे प्रकार का भय झूठ के कारण पैदा होता है। जब आदमी झूठ बोलता है अथवा गलत काम करता है तब वह अपने ही झूठ के कारण भीतर से खोखला हो जाता है। ऐसे लोग भयभीत दिखाई दें या न दिखाई दें परंतु भयभीत होते हैं। ऐसे लोग स्वयं को बचाते रहते हैं। कभी शांति नहीं पा सकते। ऐसे लोगों के लिए ध्यान में उतरने की कोई गुंजाइश नहीं है। हाँ! किसी आकस्मिक घटना से वे रूपांतरित हो जाएं और गलत से सही रास्ते पर आकर सत्य की पहचान कर लें तो बात

अलग है।

तीसरा प्रकार है स्वभावगत भय। कुछ लोग स्वभाव से ही भीरू होते हैं। ऐसे लोग कॉकरोच, छिपकली और चूहे से लेकर सबसे डरते हैं। ऐसे लोगों का कोई उपाय नहीं है। उन्हें कितनी भी हिम्मत दो परंतु वे अपनी भीरुता के पार नहीं जा सकते। ऐसे लोग ध्यान से भी डरते हैं। मेरे पास ऐसे लोग भी आते हैं और कहते हैं कि हमें ध्यान करना तो है परंतु ध्यान में कुछ हो तो नहीं जाएगा! हम ध्यान से बाहर नहीं आ पाए तो?

भय का चौथा प्रकार है–भ्रामक। अच्छे अच्छे लोगों को मैंने भ्रम में पड़कर भयभीत होते हुए देखे हैं। जैसे कि अंधेरे में भूत की कल्पना। रोड पर जा रहे हैं तो दुर्घटना की कल्पना। घर में कुछ प्रश्न खड़े हो रहे हैं तो पितृ और गृह पीड़ा की कल्पना इत्यादि। यह एक प्रकार का नकारात्मक चिंतन है। ऐसे विचार आदमी को जीने के लायक नहीं रहने देते हैं। ऐसा भय एक प्रकार का पागलपन है। जिसे मेडीकल सायन्स फोबिया कहती है। मैं कहती हूँ कि ध्यान हर प्रकार के फोबिया में से बाहर आने का उत्तम उपाय है।

मैंने भय के प्रकारों के बारे में इसलिए इतनी चर्चा की कि आप स्वयं का अभ्यास कर पाएं। आपमें भय है? अगर भय है तो किस प्रकार का है? वास्तविक भय में और भ्रामक भय में क्या फर्क है? इसे पहले जानिए और समझिए।

मैं तो कहती हूँ कि किसी भी प्रकार का भय वास्तविक नहीं है। कुछ भय को भले वास्तविक कहना पड़े क्योंकि वह मनुष्य को प्रकृति के साथ जन्मजात मिला है। परंतु भय मात्र अज्ञान है। वह मोह का और

आसक्ति का परिणाम है। संसार से जितना लगाव ज्यादा उतना ज्यादा भय और लगाव जितना कम उतनी निर्भयता। फिर भी एक वास्तविकता को हम नहीं नकार सकते हैं कि जो पूर्ण ज्ञान में नहीं पहुंचा है ऐसा प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के भय से भयान्वित है।

तंत्र कहता है कि कुछ खास प्रकार की परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाले भय से जिस रोमांच दशा का अनुभव होता है उस क्षण का उपयोग करके निर्विकल्पावस्था में प्रवेश कर लो।

विधि कहती है कि गहरा कुआ, गड्ढा आदि के पास खड़े होकर नीचे देखने पर अथवा पर्वत के ऊंचे शिखर पर खड़े होकर आसमान की ओर ताकने पर अथवा पहाड़ पर से नीचे की ओर ताकने पर अज्ञात भय की कल्पना से क्षणभर के लिए शरीर रोमांचित हो उठता है। मन घबरा जाता है। और उस क्षण में उसका सोचना बंद हो जाता है। चित्त निर्विकल्पावस्था को उपलब्ध होता है।

अब ध्यान दीजिए! जिस क्षण आप ऐसे किसी विशेष स्थान पर या विशेष परिस्थिति में भयभीत हो जाए तब उस क्षण निर्विकल्पावस्था का उपयोग कर लो। उस क्षण में प्रविष्ट हो जाओ। क्योंकि भयभीत स्थिति में मन कुछ भी सोच नहीं पाता। वह क्षणभर के लिए पंगु हो जाता है। रुक जाता है। बुद्धि कुंठित होकर निर्विचार हो जाती है। आपको इस निर्विचार अवस्था का आपकी आध्यात्मिक सजगता के लिए लाभ उठाना है। आप कहेंगे कि भयभीत अवस्था में यह कैसे हो पाएगा? दोस्तो, हो पाएगा। जब भय उत्पन्न हो तब एक क्षण के लिए उत्पन्न हुई निर्विचार स्थिति में प्रवेश करने का अर्थ है – कि आपको बाह्य विश्व से नाता तोड़कर अंतर विश्व में प्रवेश कर लेना है। भय की स्थिति

में चंचल मन जब स्थिर हुआ हो तो आपको उसका लाभ लेकर उस स्थिरता की क्षणों को लंबी करके मन के पार चले जाना है और साक्षी रहकर सोचना है कि भयभीत कौन हुआ?

जिस क्षण साक्षी जगेगा उसी क्षण आपको जवाब मिल जाएगा कि मैं तो शुद्ध-बुद्ध, चिरंतन, अजन्मा और अविनाशी हूँ; मुझे किसका भय? फिर सोचो – तो भयभीत कौन हुआ? तब भीतर से एक शाश्वत जवाब उठेगा कि भयभीत मन हुआ था, मति भयभीत हो गई थी। मैं न मन हूँ, न मति। परंतु मानसिक भय के कारण शरीर के रसायण बदले और इस वजह से मेरा शरीर और इन्द्रियाँ भयभीत हो गई थीं। क्यों? देहासक्ति के कारण, जीवन के मोह के कारण परंतु मेरा वास्तविक सत्य क्या है? मैं न शरीर हूँ, न इन्द्रियाँ। मैं तो परम प्रकाश हूँ। भय की स्थिति में ज्ञात-अज्ञात सभी पदार्थों की सत्ता गायब हो गई है। परंतु ध्यान में प्रविष्ट होते ही सजगता के साथ आप एक वास्तविक ज्ञान को उपलब्ध होते होंगे। आपको अनुभव भी होगा कि किसी भी पदार्थ की वास्तविक सत्ता नहीं है।

मेरे ऊपर केवल मेरी ही सत्ता है। ऐसा बोध होती ही साधक निर्भय होकर शांत हो जाता है। उसके चित्त में शिव का परम शांत स्वरूप अभिव्यक्त हो उठता है।





एक महाचेतना के परिचय का प्रयास.....

कोई व्यक्ति हो तो हम परिचय भी दें। परंतु एक घूमती फिरती चेतना का परिचय शब्दों से देना कैसे संभव होगा!

प्रबुद्धत्व के प्रवाह में गुरुमैया डॉ हरेश्वरीदेवीजी एक नया उद्‌गम है, एक अपूर्व आरंभ है। आज तक के किसी भी धर्म संप्रदाय सूत्रों में न जुड़कर समाज को एक नई दिशा दर्शन कराने वाली एवं धर्मक्रांति करने वाले तथा ध्यान-योग में एक विशिष्ट खोज करके ध्यान-योग में उत्क्रांति करने वाली विश्व की प्रथम नारी ऊर्जा है।

प्रत्येक युग में ज्ञान और भक्ति के मार्ग में एक विशेष नारी ऊर्जा का प्रभाव रहा है। वह फिर गार्गी हो, मैत्रेयी हो या मीरा परंतु ध्यान मार्ग में पूज्य गुरूमैया एक नया शुभारंभ है। जिसकी नींव कोई धर्म या दार्शनिक परंपरा पर नहीं है। बचपन से ही निर्भीकता, तेजस्विता, स्वतंत्रता एवं वाणी में ओजस्विता वे उनके सहज गुण रहे हैं।

एकांत स्थान में रहना, प्रकृति को आत्मसात करना और कठिन साधना पद्धतियों से गुजरना एवं शास्त्रों का गहन अध्ययन करना यह गुरूमैया का स्वभाव है।

तथाकथित धर्मगुरुओं, द्वेषपूर्ण हृदय के लोगों, और काले पत्रकारित्व की ओर से उठती हुई बाधाओं के सामने हिमालय की भांति अडिग रहकर समाज को सही धर्म के लिए जगाना ये गुरूमैया का अभियान रहा है।

ऐसी अपूर्व नारी ऊर्जा का जन्म २४ जून अषाढी बीज सन् १९६४ में हुआ। आरंभ के पैतीस वर्ष तक धर्मक्रांति और ध्यानक्रांति के द्वारा मानव मन के परिमार्जन का कार्य किया और अब गुजरात के संस्कार नगरी वडोदरा में ध्यान मंदिर की स्थापना करके लोगों को आध्यात्मिक रूप से सजग कर रहीं हैं। भौतिक सुखों से तृप्त तथापि अतृप्त और शांति के खोजिओं के लिए पूज्य गुरूमैया एक कल्पवृक्ष बनकर आध्यात्मिक छत्रछाया दे रहीं हैं और ध्यान के माध्यम से मनुष्य को आत्मसंतोष के विश्व का दर्शन उनके भीतर ही करा रहीं हैं। पूज्य माँ कहतीं हैं कि–

मुसाफिर हूँ जगाने आई हूँ ख़लक़त के लोगों को।
चली जाऊं तो तुम चुपचाप मेरे काम में लगना।।

उपरोक्त मुक्तक ही प्रबुद्धात्मा गुरूमैया हरेश्वरीदेवीजी के

परिचय के लिए काफ़ी है। फिर भी कुछ कहना चाहता हूँ –

प्रबुद्ध रहस्यद्रष्टा माँ हरेश्वरीदेवीजी विश्व के आज तक के ध्यानगुरुओं में सर्वप्रथम एक ऐसी नारी ऊर्जा है कि जिन्होंने ध्यान की अनेक नई विधिओं की शोध की और कुछ प्राचीन विधिओं की पुनर्शोध करके भाषा को सरल बनाकर ध्यान सुक्तियाँ नाम से नया ध्यान शास्त्र रचकर ध्यान पिपासुओं को उन विधियों की वैज्ञानिक समझ भी दी। विश्व को एक ऐसे ध्यान शास्त्र की आवश्यकता थी जिसे मनुष्य आसानी से समझ पाए। एक ऐसे धर्म की जरूरत थी कि जहाँ स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के नाम से मानव मूल्यों का ह्रास भी ना हो तथा धर्म के ऐसे जड़ बंधन भी न हों कि जहाँ मानव मुरझा जाए। विश्व को एक ऐसे धर्म की ज़रूरत थी कि जहाँ मनुष्य को भगवद्ता, नैतिकता, मानव मूल्य, ब्रह्मचर्य या अनुशासन सिखाना न पड़े, ना उसके ऊपर ये बातें थोपनी पड़ें परंतु साधक एक ऐसा माहोल प्राप्त करे कि उसकी जीवन शैली सहजता से बदल जाए। शुभ विचार और सद्गुण उसमें पनपने लगें।

विश्व को ऐसा माहोल देने के लिए पूज्य गुरूमैया अंतिम पैतीस वर्ष से विविध मार्ग से आध्यात्मिक पुरुषार्थ कर रहीं हैं। मैं अब स्वानुभव के द्वारा कह रहा हूँ कि अब पूज्य गुरूमैया के द्वारा एक ऐसे माहौल का निर्माण हो चुका है।

पूज्य गुरूमैया अनेकानेक भ्रमजालों में घिरे हुए समाज को धीरे धीरे मुक्त कर रहीं हैं। एक नारी शक्ति के द्वारा उठाई गई ये चुनौति कोई साधारण नहीं है। पूज्य गुरूमैया का जन्म गुजरात–सौराष्ट्र के भावनगर जिले के गढड़ा स्वामीना में एक औदीच्य ब्रह्माण परिवार में २४ जून १९६४ में हुआ। गढड़ा जैसे गाँव में इसे धर्म के एक अति से दूसरी अति पर पहुँची हुए एक कुदरती घटना ही कह

सकते हैं। पूज्य गुरूमैया ने सन्यास लेकर कोई नाम नहीं बदला। अपने माता पिता को ही गुरु मानकर अध्यात्म के आसमान में बचपन से ही उड़ना शुरु किया।

एक अपार प्रतिभा संपन्न नारी ऊर्जा का नाम है ध्यानगुरु हरेश्वरीमैया। एक सर्जक, चिंतक, कवयित्री, आयुर्वेदज्ञ, योगिनी, धर्म प्रवक्ता, पुराणों की नवसर्जक, योग–शास्त्र और ध्यान–शास्त्र रचियता उपरांत एक सींगर, कम्पोज़र, ध्यानगुरु और वात्सल्य मूर्ति विश्व माता।

पूज्य गुरूमैया ने सिर्फ १४ साल की उम्र में ज्ञानोपलब्धि के बाद महाभिनिष्क्रमण किया। जीवन के सही दर्शन हेतु वह कूद पड़ी पूर्ण असुरक्षितता में। पर्ण–कुटी लगाकर दो वर्ष तक अन्न त्याग हुआ और आध्यात्मिक संघर्ष के साथ साथ आत्मोन्नति होती गई।

जैन शास्त्र में अनेक प्रकार के सिद्ध कहे हैं–उनमें से एक प्रकार है, स्वयंसिद्ध। पूज्य गुरूमैया को हम स्वयंसिद्ध चेतना कह सकते है। धर्मक्रांति करते करते ही स्वयं के बल बूते पर विद्याप्रेमी पूज्य गुरूमैया ने फिर से अभ्यास शुरु किया। बी.ए., एम.ए. के बाद एम.एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा से पीएच.डी. की डिग्री भी प्राप्त की। अपने भीतर पड़ी कलाओं को भी विकसित किया। भारत के कई राज्यों में करोडों लोग पूज्य गुरूमैया के सत्संग, प्रवचन, ज्ञानयज्ञ एवं ध्यान–शिबिरों द्वारा लाभान्वित हुए। गुरूमैया के धर्मक्रांतिपूर्ण विचारों का प्रचंड हकारात्मक प्रतिसाद मिला। ऐसे आरोह अवरोह में से गुज़रकर एक छोटी सी गंगोत्री धर्मक्रांति एवं ध्यानकार्य करते करते अब तो बन गई है एक महासागर।

अनेक नूतन ध्यान विधियों की पुरस्कर्ता पूज्य माँ यूरोप, आफ्रीका और यू.एस.ए. आदि खंडों में धर्मक्रांति और ध्यानशिबिरों

के लिए यात्रा कर चुकी हैं। किसी भी धर्मसंप्रदाय के संगठन में जुड़े बिना स्वपुरुषार्थ, आत्मबल और अतिचेतस शक्तियों के द्वारा पूज्य गुरूमैया ने जो नूतन धर्म अभियान का आरंभ किया है उसके लिए पूरा विश्व उसका ऋणी रहेगा तथा नई दृष्टि और नया जीवन पाता रहेगा।

मैं कहता हूँ कि पूज्य गुरूमैया ने विश्व को ध्यान के लिए तंदुरस्त माहोल, विचार, नई दृष्टि एवं दिशाएं दी हैं इसलिए विश्व पूज्य माँ का ऋणि रहेगा। परंतु पूज्य माँ हमेशा कहती हैं कि मैं तो ये सब करके अस्तित्व का ऋण चुका रही हूँ पृथ्वी पर की मेरी यात्रा के दौरान।

–पूज्य गुरूमैया का अनुग्रहपात्र शिष्य
एवं आश्रम का अंतेवासी
योगी स्वामी शैलेश्वर



साधना के सुनहरे सप्त सोपान

१. प्रत्येक विधि अनुभवी ध्यान गुरु के मार्गदर्शन में हो तो ज्यादा अच्छा।
२. प्रत्येक विधियों को अपने ढंग से नहीं परंतु उचित रूप से समझने के बाद ही साधना का आरंभ करें।
३. किसी भी विधि को कम से कम २४ मिनिट करें।
४. अनुकूल विधि में कम से कम ३० दिन से लेकर ९६ दिन तक उतरें।
५. यदि संभव है तो इन ९६ दिनों के दौरान कुदरत के सानिध्य में अथवा किसी शांत आश्रम में निवास करें।
६. सात्विक आहार, सज्जनों का संग, मौन और नशाकारक पदार्थों से दूर रहना - ज्यादा हितकर है।
७. साधना समय के वस्त्र अलग रखें। सफेद, भगवा अथवा हरा रंग ज्यादा सहयोग कर पाएगा। वस्त्र खुले और स्वच्छ होने चाहिए।

-: ध्यान मंदिर :-

ए-५, सनमून पार्क, अकोटा, वडोदरा, गुजरात, भारत
www.maahareshwaridevi.com. email: info@maahareshwaridevi.com